RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/04/KPHO/2017-19
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

मार्च 2019 | वर्ष – 11 | अंक : 2 | मूल्य : 5/-

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074

संरक्षक मण्डल :

मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621

कानूनी सलाहकार :

एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, एड. सुशील कुमार

राज्य उत्तर प्रदेश राज्य ब्यूरो प्रमुख :

सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :

40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631

मध्य प्रदेश राज्य :

ब्यूरो चीफ मुकेश कुमार अहिरवार, छत्तरपुर, मो.: 09039546658

छत्तीसगढ़ राज्य :

दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170

दिल्ली प्रदेश :

C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317

राजस्थान राज्य :

रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360

चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349

बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233

हरियाणा राज्य :

डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052

संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :

ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)

मो. : 9005204074, 8756157631

E-mail : dravinbharat1@gmail.com

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी

उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें -
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

होलिका दहन

फागुन महीने की पूर्णिमा को यह त्यौहार मनाया जाता है। इस अवसर पर लकड़ी घास फूँस का बड़ा ढेर लगाकर एक भड्डरी या ब्राह्मण के द्वारा आग लगाई जाती है। यज्ञ भी इसी दिन किया जाता है। बुहत कीमती पकवान बनाए जाते हैं। रंग गुलाल की रंगाई होती है शराब भंग पी जाती है और स्त्रियों के साथ नाँच रंग होता है। होली रात्रि में सूर्योदय से पहले जलाई जाती हैं। होली कथा भविष्य पुराण में आई है। नारद राजा युधिष्ठर को होली की कथा सुनाते हैं कि हिरण्य कश्यप की बहन और प्रहलाद की बुआ होलिका को आग में डालकर जला दिया गया था इसी दिन होली जलाई जाती है। राक्षस की बहिन ही हत्या की खुशी में नाँच रंग अबीर गुलाल डालकर होली मनाई जाती है। कथा में आया है कि हिरण्य कश्यप राक्षसों का राजा था और आर्यों का घोर विरोधी था। आर्य इन देवताओं के नाम पर निरपराध पशुओं की बलि देकर हिंसा करते थे। उसने अपने राज्य में पशु बलि बन्द करा दी और हत्यारे आर्य ब्राह्मणों को जेल में डाल दिया। ब्रह्मा विष्णु की पूजा पर प्रतिबन्ध लगा दिया और इनका नाम लेने और ब्राह्मण के पाखण्ड पर दण्ड देने लगा। इसके भय से ब्राह्मण और उनके देव विष्णु ने मिलकर हिरण्य कश्यप के वध करने की योजना बनाई और कपटी वेष बनाकर विष्णु ने नकली शेर की खाल ओढ़कर खम्भे से छिपकर उस अनार्य राजा को मार डाला। प्रहलाद जो उनका लड़का था उसे बरगला कर अपनी ओर मिला लिया। कुटुम्ब द्रौही प्रहलाद अपनी बुआ को धोखा देकर ले गया और आर्यों द्वारा उसे आग में जलवा दिया और स्वयं बच गया।

विधि विधान : फागुन पूर्णिमा के व्यतीत होने पर सुबह पहर में होली जलाई जाती है। उससे एक पक्ष पूर्व होली रखी जाती है लकड़ी कण्डे इकट्ठे किए जाते हैं और पूर्णमासी को जला दिए जाते हैं। परिवा के दिन नाच रंग होता है अबीर गुलाल से होली खेलते हैं घरों मे अच्छे पकवान बनाते हैं और स्त्री पुरूष सभी नशे में धुत होकर रिश्ते नाते बंधन टूट जात हैं लज्जा खूटी पर रख दी जाती है और खुलकर हँसी मजाक होता है ससुर बहू को बहू ससुर को देवर भाभी को जेठ छोटी भाभी से खूब विनोद मनाते है। हिन्दुओं की घोर अश्लीलता का यह त्यौहार है अगर इस अवसर पर कोई हिन्दू परदा को रिश्ते वाल स्त्री से भी भोग कर बैठे तो कोई दण्ड की व्यवस्था नही है। परिवा के दिन हिन्दू होली की परिक्रमा कर अक्षत डालते हैं और ढोलक मंजीरों के साथ गाते बजाते हैं। पूर्णिमा के दिन रात्रि में सब लोग इकट्ठे होते हैं और होली के पास उत्तर या पूरब की ओर मुँह करके बैठते हैं फिर एक ब्राह्मण द्वारा होली में आग लगाई जाती है कुँवारी हिन्दू कन्याएँ रात में ही जाती हैं। थाली में भोजन और दान ले जाती हैं और होली का पूजन कर वह भोजन दान ब्राह्मण को देती है। गेहूँ, जौ, चना की बालें भूनी जाती हैं। ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। राक्षस दमन की खुशी में सभी हिन्दू एक – दूसरे के गले मिलते हैं। गाँजा भांग शराब छक कर पिए जाते हैं।

उद्देश्य एवं रहस्य : यह आर्य और अनार्य के संघर्ष की एक खून भरी कहानी है। हिरण्य कश्यप अनार्य आदिवासी राजा था जिनके वंशज आज शूद्र हैं राजा कश्यप को शेर की खाल ओढ़कर मुँह छिपाकर मारा था ताकि पहचाने न जा सके और कश्यप का लड़का प्रहलाद भी न जान सके कि जो लोग उससे मिले हैं उन्हीं ने उसके पिता की हत्या कर दी है। नरसिंह अवतार की कहानी महज शूद्रों के विद्रोह को रोकने की नियत से गढ़ी गई है जो मनगढ़ंत है। राजा हिरण्य कश्यप के राज्यकाल के समय की समस्त पुस्तके और साहित्य को जला डाला गया बाद में प्रहलाद को भी मार डाला गया। जिस समय आर्यों ने यह विद्रोह अनार्य राजा के विरुद्ध कथा और शूद्र राजा को मार डाला तो अनार्य शूद्र जाति की स्त्रियों के साथ सामूहिक बलात्कार किया और उसी की परम्परा में भी समाज के सवर्ण ठेकेदार दलाल गरीबों दलितों की माँ बहनों की इज्जत के साथ खेलते और होली के हुड़दंग के नाम पर इन्हें अपनी हविश का शिकार बनाते हैं। हर साल पर्व के नाम पर रंग, गुलाल लेकर इनके घरों में इनकी स्त्रियों के पास पहुँच जाते है। कितनी विडम्बना है कि सैकड़ों वर्षो से इस दलित शूद्र जाति ने हिन्दुओं के इस अत्याचार को हँसकर स्वीकारा है। उसने यह भी न सोचा कि यह उसी के राजा और उसी के वंश के विनाश के यादगार की कहानी होली का पर्व है और आज के दिन सवर्ण हिन्दुओं को जो महिलाओं से मिलने की छूट मिल जाती है उसी के फलस्वरूप वह हिन्दू उस शूद्र की स्त्रियों के साथ सालों भी बलात्कार जैसे कुकर्म करता रहता है।

होली के त्यौहार पर गले मिलकर रंजिश उससे बदला न लें और अपनी पीड़ा भूल जाये। भेद भाव मिटाने का नाटक रचा जाता है। इसका अर्थ है कि सारे वर्ष जुल्म अत्याचार हत्या लूट ये सवर्ण हिन्दू करता है और शूद्र इन अपराधों का शिकार होता है। इस अवसर पर सवर्ण हिन्दू यह गले मिलकर अपने ऊपर किए गए कुकर्म अपराधों को भूल जाने की सलाह देता है। ताकि शूद्र उससे बदला न लें और अपनी पीड़ा भूल जाये।

इस त्यौहार पर ब्राह्मणों की पौ बारह होती है। भोजन दान हफ्तों चलता है। झोली भर-भर कर दान दिया जाता है। हाथी, घोड़ा, गाय, अन्न, सोना, चाँदी, बर्तन जो जैसा दान दे पाता है। ब्राह्मणों को दान देता है। यह ब्राह्मण की स्वार्थ पूजा का त्यौहार है बाजार से करोड़ों रुपए की घी, तेल, अबीर, गुलाल, रंग पिचकारी आदि सामग्री खरीद कर खर्च कर दी जाती है इससे गरीब पर कर्ज बढ़ता और बनियों के घर बनते हैं गरीब गरीब कर्ज लेकर खर्च करता है और वैश्य वर्ण चौगुने लाभ पर बेचता है। यह शूद्रों की बरबादी का त्यौहार है।

वास्तविकता यह है कि होली शूद्रों पर अत्याचार की यादगार है। शूद्र इसे भूल जाएँ और अपने ही राजा और राज महिला होलिका की हत्या भूलकर उन्हें ही पापी अत्याचारी समझने लगें। यह त्यौहार उसी षड्यन्त्र की कड़ी है, इस प्रकार यह त्यौहार शूद्र जाति के लिए अपमान शेषण दमन और अत्याचार की कहानी है। इसे शूद्रो को नहीं मनाना चाहिए।

साभार :
हिन्दुओं के व्रत-पर्व और त्यौहार
एस.एल. सागर

करोड़ों की आबादी को नकारने का प्रयास

I. अस्पृश्यों की संख्या काफी समय तक अज्ञात रहीं,
II. सन् 1911 की जनगणना और पृथक गणना का पहला प्रयास,
III. सन् 1911 की जनगणना के निष्कर्षो की पुष्टि,
IV. लोथियन कमेटी और हिंदुओं का कोई 'अस्पृश्य नहीं' का नारा,
V. इस नारे के कारण, और
VI. पिछड़े वर्गों तथा मुस्लिमों का रवैया।

I

भारत के अस्पृश्यों की कुल आबादी कितनी है? जो व्यक्ति इन लोगों के बारे में कुछ जानना चाहेगा, उसका निश्चय ही पहला सवाल यही होगा। अब तो इस सवाल का जवाब आसानी से दिया जा सकता है। 1931 की भारत की जनगणना के अनुसार उनकी आबादी पांच करोड़ थी। जहां अब यह संभव है कि भारत में अस्पृश्यों की आबादी के बारे में कमोबेश सही आंकड़े दिए जा सकें, वहीं पहले काफी समय तक ऐसा करना संभव नहीं था।

इसके अनेक कारण थे। पहला कारण तो यह है कि अस्पृश्यता कोई कानूनी शब्द नहीं है। अस्पृश्यता की ऐसी कोई सटीक कानूनी परिभाषा नहीं है कि उसके द्वारा यह परिभाषित किया जा सके कि कौन अस्पृश्य है और कौन नहीं है। अस्पृश्यता एक सामाजिक धारणा है, जिसने एक प्रथा का रूप ले लिया है और चूंकि प्रथा का अलग–अलग रूप होता है, अतः वही दशा अस्पृश्यता की है। इसलिए इस बारे में सदा ही कुछ–न–कुछ कठिनाई आ रही है कि निश्चित गणितीय मापदंड के अनुसार अस्पृश्यों की आबादी का आकलन किया जा सके। दूसरे, सवर्ण हिंदू सदा ही इस बात का तीव्र विरोध करते रहे हैं कि जनगणना रिपोर्ट के लिए जाति के अनुसार गणना की जाए। उनका आग्रह रहा है कि अनुसूचियों के लिए जाति संबंधी सवाल को न उठाया जाए और जाति तथा जनजाति के आधार पर जनसंख्या का वर्गीकरण न किया जाए। 1901 की जनगणना के बारे में इसी आशय का प्रस्ताव किया गया था। उसका मुख्य आधार था कि जनसंख्या में विभिन्न जातियों तथा जनजातियों का विभाजन लंबे अंतरालों के बाद बदलता है और यह जरूरी नहीं है कि हर दस साल के बाद होने वाली जनगणना में उनके आंकड़े प्राप्त किए जाएं।

जनगणना आयुक्त पर आपत्ति के इन आधारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा आयुक्त के विचार में जाति के अनुसार गणना महत्वपूर्ण और आवश्यक थी। जनगणना आयुक्त की दलील थी :

सामाजिक संस्था के रूप में जाति के गुण–दोषों के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, परंतु यह स्वीकार करना असंभव है कि भारत में जनसंख्या संबंधी समस्या पर कोई भी विचार–विमर्श जिसमें जाति एक महत्वपूर्ण मुद्दा न हो, लाभप्रद हो सकता है। भारतीय समाज का ताना–बाना अभी जाति–व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समाज के विभिन्न स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण अभी भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक हिंदू (यहाँ इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जा रहा है) जाति में जन्म लेता है, उसकी वह जाति ही उसके धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और परिवारिक जीवन का निर्धारण करती है। यह स्थिति माँ की गोद से लेकर मृत्यु की गोद तक रहती है। पश्चिमी देशों में समाज के विभिन्न स्तरों का निर्धारण, चाहे वह आर्थिक हो, शैक्षिक हो या व्यावसायिक हो, जिन प्रधान तत्वों के द्वारा होता है, वे अदलते–बदलते रहते हैं, वे उदार होते हैं और उनमें जन्म और वंश की कसौटी को बदलने की प्रवृत्ति होती है। भारत में आध्यात्मिक, सामाजिक, सामुदायिक तथा पैतृक व्यवसाय सबसे बड़े तत्व हैं, जो अन्य तत्वों की अपेक्षा प्रधान तत्व होते हैं। इसलिए पश्चिमी देशों में जहाँ जनगणना के समय आर्थिक अथवा व्यावसायिक वर्ग के आधार पर आंकड़े एकत्र किए जाते हैं, वहाँ भारत में जनगणना के समय धर्म और जाति का ध्यान रखा जाता है। राष्ट्रव्यापी और सामाजिक संस्था के रूप में जाति के बारे में कुछ भी क्यों न कहा जाए, इसकी उपेक्षा करने से कोई लाभ नहीं होगा और जब तक समाज में किसी व्यक्ति के अधिकार और उसके पद की पहचान जाति के आधार पर की जाती रहेगी, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हर दस साल के बाद होने वाली जनगणना से इस अवांछनीय संस्था के स्थाई होते जाने में सहायता मिलती है।

सन् 1911 की जनगणना के अवसर पर जनगणना में जाति के अनुसार गणना किए जाने पर और अधिक जोरदार तरीके से आपत्तियां उठाई गईं। उस समय दस कसौटियों वाली एक विशेष प्रश्नावली जारी की गई। उद्देश्य यह था कि इन कसौटियों को पूरा करने वाली जातियों का एक समूह बना दिया जाए। इसमें संदेह नहीं कि ये ऐसी कसौटियां थीं, जो दलित वर्गों को सवर्ण हिंदुओं से अलग करती थीं। सवर्ण हिंदुओं को आशंका थी कि यह परिपत्र भारत मंत्री (सेक्रेटरी आफ स्टेट) के नाम मुस्लिम ज्ञापन का नतीजा था और इसका उद्देश्य दलित वर्गों को हिंदुओं से अलग कर देना था, ताकि हिंदू समाज की संख्या और उसकी महत्ता को कम कर दिया जाए।

यह प्रतिरोध निष्फल रहा और उन दस कसौटियों को पूरा करने वाली जातियों की गणना जनसंख्या रिपोर्ट में अलग से करने के उद्देश्य को पूरा किया गया। लेकिन प्रतिरोध पूर्णतः शांत नहीं हुआ। 1921 की जनगणना के समय वह पुनः उभरा। इस अवसर पर औपचारिक रीति से जातीय विवरणी पर आपत्ति उठाने का प्रयास किया गया। 1920 में सम्राट की विधायिका (इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। इसमें जाति संबंधी पूछताछ की आलोचना की गई। आलोचना के आधार थे : (क) जातिभेद की प्रथा को सरकारी प्रयास द्वारा मान्यता देना और बनाए रखना वांछनीय नहीं हैं, और (ख) विवरणियां गलत और व्यर्थ हैं, क्योंकि निम्न जातियों ने स्वयं को उच्चतर स्तर के समूहों के रूप में प्रदर्शित करने के अवसर का लाभ उठाया है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता तो अस्पृश्यों की संख्या की जानकारी पाना संभव न हो पाता। सौभाग्य से प्रस्तावक की अनुपस्थिति के कारण प्रस्ताव पर चर्चा नहीं हुई और 1921 का जनगणना आयुक्त सामान्य रीति से अपनी जांच करने के लिए स्वतंत्र रहा।

तीसरे, 1911 से पहले किसी भी जनगणना आयुक्त ने अस्पृश्यों की अलग से गणना करने का कोई प्रयास नहीं किया। भारत में पहली बार आम जनगणना 1881 में हुई थी। 1881 की जनसंख्या रिपोर्ट में भारत की कुल जनगणना करने के लिए यहाँ की प्रजातियों की सूची बनाने और उनका कुल योग करने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया गया। इस रिपोर्ट में विभिन्न हिंदू जातियों का उच्च या निम्न अथवा स्पृश्य या अस्पृश्य जातियों के रूप में कोई वर्गीकरण नहीं किया गया। भारत की दूसरी आम जनगणना 1891 में हुई। इस जनगणना में पहली बार जनगणना आयुक्त ने जनसंख्या को जाति, प्रजाति और उच्च या निम्न जाति के रूप में वर्गीकृत करने की कोशिश की।

भारत की तीसरी आम जनगणना 1901 में हुई थी। इस जनगणना में वर्गीकरण का एक नया सिद्धांत अपनाया गया, अर्थात 'देशी जनमत द्वारा मान्य सामाजिक पूर्वता के आधार पर वर्गीकरण।' हिंदू समाज जैसे समाज के लिए यह सिद्धांत सर्वाधिक उपयुक्त सिद्धांत था, क्योंकि वह समता को स्वीकार नहीं करता और उसकी समाज–व्यवस्था उच्चतर तथा निम्नतर के श्रेणीकरण की व्यवस्था है। भारतीय जनता का जो विशाल वर्ग प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जाति के आधार पर संगठित है, उसके सामाजिक जीवन और समूहन का जितना सुस्पष्ट चित्र सामाजिक पूर्वता का यह सिद्धांत प्रस्तुत कर सकता है, उतना अन्य कोई नहीं कर सकता।

II

जनगणना आयुक्त ने स्पष्ट रूप से तथा समझ–बूझकर अस्पृश्यों की संख्या सुनिश्चित करने का प्रथम प्रयास 1911 में किया। 1911 की जनगणना से ठीक पहले का समय ऐसा था, जब मार्ले–मिंटो सुधार प्रारंभिक अवस्था में थे। यह वह समय था, जब भारत के मुसलमानों ने पृथक निर्वाचक–मंडलों के जरिए विधान–मंडलों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व पाने के लिए आंदोलन शुरू कर दिया था। अपने प्रचार के अंग के रूप में मुसलमानों का प्रतिनिधि–मंडल कौंसिल में तत्कालीन भारत मंत्री लार्ड मार्ले से मिला और उसने उन्हें 27 जनवरी 1909 को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया। उस ज्ञापन में कहा गया... (बयान मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि में दर्ज नहीं है–संपादक)

सन् 1907 में अस्पृश्यों के बारे में मुस्लिम प्रतिनिधि–मंडल ने अपने ज्ञापन में जो आग्रह किया, उसका कोई संबंध चार वर्ष बाद के अस्पृश्यों की अलग से गणना करने के जनगणना आयुक्त के विचार से है या नहीं, यह एक ऐसा मामला है, जिसके बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि जनगणना आयुक्त ने 1911 में जिस कार्य का प्रस्ताव रखा, वह केवल उन उपायों की चरम परिणति हो, जिन्हें उसके पूर्व के आयुक्तों ने जनसंख्या के अध्ययन के लिए अपनाया। जो भी हो, हिंदुओं ने उस समय भारी हंगामा किया, जब जनगणना आयुक्त ने अस्पृश्यों की अलग से गणना करने की अपनी योजना का एलान किया। ऐसा कहा गया है कि जनगणना आयुक्त का यह प्रयास उस साजिश का नतीजा था, जिसे हिंदू समाज में फूट डालने और उसे निर्बल बनाने के लिए मुसलमानों तथा अंग्रेजों ने रची थी। कहा गया कि इस प्रयास के पीछे यह सच्ची कामना नहीं थी कि अस्पृश्यों की संख्या मालूम की जाए, बल्कि यह कामना थी कि स्पृश्यों से अस्पृश्यों को अलग करके हिंदू समाज की एकजुटता को भंग कर दिया जाए। हिंदुओं ने देश–भर में प्रतिरोध में अनेक सभाएं की और जनगणना आयुक्त की इस योजना की कठोरतम शब्दों में निंदा की।

तथापि, प्रतिरोध के इस तूफान से विचलित हुए बिना जनगणना आयुक्त ने अपनी योजना को पूरा करने का निश्चय किया। इसमें संदेह नहीं कि अस्पृश्यों की अलग से गणना करने का जो तरीका उन्होंने अपनाया, वह अनोखा था। जनगणना आयुक्त ने विभिन्न प्रांतों के जनगणना अधीक्षकों को अनुदेश दिया कि जिन जातियों तथा जनजातियों का वर्गीकरण हिंदुओं के रूप में किया गया है, पर जो कतिपय मापदंडों को पूरा नहीं करतीं अथवा तो कतिपय निर्योग्यताओं से ग्रस्त हैं, उनकी गणना अलग से की जाए।

इस कसौटियों के अनुसार जनगणना अधीक्षकों ने उन जातियों तथा जनजातियों की अलग से गणना की : (1) जो ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को नहीं मानते, (2) जो किसी ब्राह्मण या अन्य मान्यता प्राप्त हिंदू से गुरु–दीक्षा नहीं लेते, (3) जो वेदों की सत्ता स्वीकार नहीं करते, (4) जो बड़े–बड़े हिंदू देवी–देवताओं की पूजा नहीं करते, (5) ब्राह्मण जिनकी यजमानी नहीं करते, (6) जिनका कोई ब्राह्मण पुरोहित बिल्कुल भी नहीं होता, (7) जो साधारण हिंदू मंदिरों के गर्भ–गृह में प्रवेश नहीं कर सकते, (8) जिनसे छूत लगती है, (9) जो अपने मुर्दों को दफनाते हैं, और (10) जो गोमांस खाते हैं, और गाय की पूजा नहीं करते।

जनगणना आयुक्त की छानबीन ने अटकल की कोई गुंजाइश ही नहीं छोड़ी। उन्होंने तथ्यतः यह मालूम कर लिया कि अस्पृश्यों की आबादी कितनी थी। 1911 के जनगणना आयुक्त की खोज के अनुसार प्रांतवार

अस्पृश्यों की संख्या निम्न सारणी में दर्शाई गई है–

प्रांत	कुल आबादी (दस लाख में)	दलित वर्गों की आबादी (दस लाख में)	कुल सीटें	दलित वर्गों के लिए सीटें
मद्रास	39.8	6.3	120	2
बंबई	19.5	0.6	113	1
बंगाल	45.0	9.9	127	1
संयुक्त प्रांत	47.0	10.1	120	1
पंजाब	19.5	1.7	85	—
बिहार तथा उड़ीसा	32.4	9.3	100	1
मध्य प्रांत	12.0	3.7	72	1
असम	6.0	0.3	54	—
	221.2	41.9	791	7

हो सकता है कि बाहर वाला कोई व्यक्ति इन कसौटियों की महत्ता और प्रभाव को न समझ पाए। वह पूछ सकते हैं कि इस सबका अस्पृश्यता से क्या लेना–देना है। लेकिन अस्पृश्यों की आबादी सुनिश्चित करने से संबंधित प्रश्न के संदर्भ में उनकी महत्ता और प्रभाव को वह समझ पाएगा। जैसा कि बताया जा चुका है, अस्पृश्यता की कोई कानूनी परिभाषा नहीं है और कोई परिभाषा हो भी नहीं सकती। अस्पृश्यता स्वयं को सिर के बाल या चमड़ी के रंग के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकती। इसका रक्त से कोई संबंध नहीं है। कतिपय प्रथाओं के पालन और व्यवहार के तरीकों में अस्पृश्यता परिलक्षित होती है। अस्पृश्य वह व्यक्ति है, जिसके साथ हिंदू एक निश्चित प्रकार का व्यवहार करते हैं और जो हिंदुओं से भिन्न कतिपय रीति–रिवाजों का पालन करते हैं। सामाजिक मामलों में अस्पृश्यों के साथ हिंदू निश्चित प्रकार का व्यवहार करते हैं। अस्पृश्य उन निश्चित प्रथाओं का पालन करतें हैं। जब स्थिति यह है तो कौन अस्पृश्य है, इसका पता लगाने का केवल यही तरीका है कि उनके रीति–रिवाजों को कसौटी माना जाए और यह पता लगाया जाए कि कौन–सी जातियां उनका पालन करती हैं। अन्य कोई उपाय है ही नहीं। यदि बाहर वाला व्यक्ति इस बात को ध्यान में रखता है तो वह समझ पाएगा कि यद्यपि जनगणना आयुक्त द्वारा निर्धारित कसौटियां अस्पृश्यता का कोई रंग नहीं दर्शातीं, फिर भी तथ्य यह है कि वे अस्पृश्यता के प्रमाण–चिन्ह हैं। जब स्थिति यह है तो इस बारे में कोई संदेह नहीं रह सकता कि प्रक्रिया उचित थी और कसौटियां खरी थीं। अतः यह कहना सही होगा कि जहाँ तक इस प्रकार के मामले हो सकते हैं, इस छानबीन के नतीजे महत्वपूर्ण थे और प्राप्त आंकड़े सही थे।

III

अस्पृश्यों की कुल आबादी के बारे में 1911 के जनगणना आयुक्त के निष्कर्षों की पुष्टि 1921 के जनगणना आयुक्त ने की।

सन् 1921 के जनगणना आयुक्त ने अस्पृश्यों की आबादी को सुनिश्चित करने के लिए छानबीन भी की। इस रिपोर्ट के भाग **I** में जनगणना आयुक्त ने कहा है :

हाल के वर्षों में समाज के कतिपय वर्ग को 'दलित वर्ग' कहने का रिवाज सा हो गया है। जहाँ तक मुझे मालूम है 'दलित वर्ग' शब्द की कोई अंतिम परिभाषा नहीं है, और न ही निश्चित रूप से इससे यह पता चलता है कि कौन–कौन उसके अंतर्गत आता है। 1912/17 तक की शिक्षा संबंधी प्रगति के बारे में पंचवर्षीय समीक्षा (अध्याय 18, पैरा 505) में शिक्षा–सहायता तथा प्रगति की दृष्टि से दलित वर्गों पर विशेष रूप से विचार किया गया है। उस रिपोर्ट के परिशिष्ट **XIII** में एक सूची दी गई है। उसमें इस समुदाय के इस वर्ग की जातियों तथा जनजातियों का उल्लेख किया गया है। इस सूची के अनुसार दलित के रूप में वर्गीकृत कुल आबादी तीन करोड़ दस लाख अथवा ब्रिटिश भारत की हिंदू जनजातीय आबादी का 29 प्रतिशत बताई गई है। इसमें संदेह नहीं कि एक सरकारी रिपोर्ट में संभवतः आपत्तिजनक लगने वाले सामाजिक विभेद को प्रकाशित करने में अप्रसन्नता का कुछ जोखिम है, लेकिन यह तथ्य है कि सूचियां प्रकाशित हो चुकी हैं और विशेषतः दक्षिण भारत में दलित वर्गों में वर्ग–चेतना और वर्ग–संगठन पैदा हो चुका है, और उनकी सेवा वे विशेष मिशन कर रहे हैं, जिन्हें परोपकारी संस्थाओं ने खड़ा किया है तथा जिन्हें अधिकृत रूप से विधान–मंडलों में प्रतिनिधित्व प्राप्त है। इस तथ्य को देखते हुए निश्चय ही यह उचित दीख पड़ता है कि तथ्यों का सामना किया जाए और उनकी संख्या के बारे में आंकड़ों का कुछ आकलन प्राप्त किया जाए। अतः मैंने प्रांतीय अधीक्षकों से कहा कि वे मेरे सामने एक आकलन प्रस्तुत करें। मैंने उनसे कहा कि आकलन में उन जातियों की कमोबेश सही संख्या के लिए जनगणना के आंकड़ों को आधार बनाया जाए, जिन्हें आमतौर पर दलित की श्रेणी में शामिल किया गया है।

मुझे सभी प्रांतों तथा राज्यों से किसी–न–किसी प्रकार की सूचियां प्राप्त हुईं, पर संयुक्त प्रांत इसका अपवाद रहा। वहां की सरकारी मनोदशा की छुईमुई नजाकत ने मोटा अनुमान देने की कोशिश भी गवारा नहीं की। दिए गए आंकड़े सही तथा समान कसौटियों पर आधारित नहीं हैं, क्योंकि भारत के अलग–अलग हिस्सों में एक जैसे समूहों की स्थिति के बारे में अलग दृष्टि अपनाई जाती है। अतः कुछ मामलों में मुझे आकलनों में संशोधन करना पड़ा। इसके लिए मैंने शिक्षा संबंधी रिपोर्ट के आंकड़ों और 1911 की रिपोर्ट तथा सारणियों की सूचना को आधार बनाया। वे भी इस पूर्वोक्त सामान्य त्रुटि से ग्रस्त हैं कि किसी जाति की कुल संख्या दर्ज नहीं की गई है। लेकिन विवरण इस बारे में मोटा अनुमान दे देता है कि वह कौन–सी 'न्यूनतम' संख्या है, जिसे हिंदू समाज का 'दलित वर्ग' माना जा सकता है। इन प्रांतीय आंकड़ों का कुल जोड़ पांच करोड़ तीस लाख के लगभग बैठता है। लेकिन इसे भी एक निम्न तथा अनुदार आकलन मानना होगा। इसमें (1) संबद्ध जातियों और जनजातियों की कुल संख्या नहीं दी गई है, जो अभी हाल में हिंदू धर्म में शामिल हुए हैं और जिनमें से अनेक को अपवित्र माना जाता है। हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि जिन दलित वर्गों को अपवित्र माना जाता है, उन सबकी संख्या भारत में ही साढ़े पांच और छह करोड़ के बीच होगी।

फिर साइमन कमीशन ने जांच की। इस कमीशन को 1929 के ब्रिटिश संसद ने नियुक्त किया। उससे कहा गया कि वह 1919 के भारत सरकार के अधिनियम के अधीन लागू किए गए सुधारों के कार्य की जांच करे और अन्य सुधारों का सुझाव दे।

उस समय जब उन सुधारों पर चर्चा हो रही थी जिन्हें बाद में 1919 के अधिनियम में शामिल किया गया, मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट तैयार करने वालों ने स्पष्टः अस्पृश्यों की समस्या को स्वीकार किया। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे विधान–मंडलों में उनके प्रतिनिधित्व के लिए सर्वोत्तम व्यवस्था करेंगे। लेकिन लार्ड साउथबरो की अध्यक्षता में मताधिकार तथा मतदान प्रणाली सुझाने के लिए जो कमेटी नियुक्त की गई, उसने उनकी पूर्ण उपेक्षा की। पर भारत सरकार ने उसकी इस उपेक्षा का अनुमोदन नहीं किया और निम्न टिप्पणी की :

वे (अस्पृश्य) कुल आबादी का पांचवां भाग हैं और उन्हें मार्ले–मिंटो कौंसिलों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। कमेटी की रिपोर्ट में उनका (अस्पृश्यों के रूप में) दो बार उल्लेख किया गया है, लेकिन केवल यह जताने के लिए कि संतोषजनक निर्वाचन–क्षेत्र न होने की दशा में उनके लिए नाम निर्देशन की व्यवस्था कर दी गई है। उसमें यह उल्लेख नहीं किया गया है कि इन लोगों की स्थिति क्या है और उनमें स्वयं अपनी देखरेख करने के लिए कितने नामंकन का सुझाव दिया है... कितने प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव किया है। उसने सुझाव दिया कि ब्रिटिश भारत की कुल आबादी के पांचवे भाग के लिए लगभग आठ सौ सीटों में से सात सीटें अलॉट की जाएं। यह सच है कि सभी कौंसिलों में अधिकारियों का लगभग छठा भाग ऐसा होगा, जिनसे यह आशा की जा सकती है कि वे (अस्पृश्यों) के हितों का ध्यान रखेंगे, पर हमारी राय में सुधारों संबंधी रिपोर्ट का यह लक्ष्य नहीं है। रिपोर्ट तैयार करने वालों ने कहा कि (अस्पृश्यों) को भी आत्मरक्षा का पाठ पढ़ना चाहिए। निश्चय ही, यह कैसी बेतुकी आशा है कि एक ऐसी विधायिका में जहाँ साठ–सत्तर सवर्ण हिंदू हों, इस समुदाय के एक अकेले प्रतिनिधि को शामिल करके वह नतीजा हासिल किया जा सकेगा। यदि रिपोर्ट के सिद्धांतों को सार्थक बनाना है, तो हमें बहिष्कृतों के प्रति और अधिक उदार व्यवहार करना ही होगा।

सरकार ने सिफारिश की कि कमेटी ने अस्पृश्यों के लिए जितनी सीटें अलॉट की हैं, उनकी संख्या को दुगना कर दिया जाए। तदनुसार सात के स्थान पर उन्हें चौदह सीटें दी गईं। हम देखेंगे कि यदि व्यवहार की कसौटी पर हम भारत सरकार की उदारता को परखें, तो वह नगण्य–सी है। निश्चय ही, वह अस्पृश्यों को समुचित न्याय प्रदान नहीं करती।

जिन समस्याओं का 1919 में समुचित समाधान नहीं किया गया, उनमें अस्पृश्यों की समस्या भी थी, जो साइमन कमीशन के सामने सुरसा बन कर खड़ी हो गई। अति अप्रत्याशित रूप से लार्ड बर्कनहेड (दिवंगत) ने इस समस्या पर विशेष बल दिया। वह उस समय भारत मंत्री थे। साइमन कमीशन की नियुक्ति से ठीक पूर्व... को दिए गए एक वक्तव्य में उन्होंने कहा ... (मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि में स्थान खाली छोड़ दिया गया है – संपादक।

स्वाभाविक है कि समस्या साइमन कमीशन के लिए एक विशेष कठोर कर्म बन गई। भले ही यथा प्रस्तुत समस्या प्रतिनिधित्व देने की थी और उस अर्थ में राजनीतिक समस्या थी, पर वास्तव में समस्या यह थी कि अस्पृश्यों की संख्या सुनिश्चित की जाए। क्योंकि जब तक संख्या सुनिश्चित नहीं की जाती, तब तक यह तय नहीं किया जा सकता था कि विधान–मंडल में कितना प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए।

अतः साइमन कमीशन को अस्पृश्यों की संख्या के बारे में सूक्ष्म जाँच करनी पड़ी। उसने विभिन्न प्रांतीय सरकारों से आग्रह किया कि वे अपने क्षेत्र में बसे अस्पृश्यों की संख्या के बारे में विवरणियाँ प्रस्तुत करें। कौन नहीं जानता कि इन विवरणियों को तैयार करते समय प्रांतीय सरकारों ने विशेष सावधानी बरती। अतः अस्पृश्यों की कुल संख्या के सही होने के बारे में कोई शंका नहीं हो सकती। निम्न सारणी में अस्पृश्यों की आबादी के आंकड़े उस रूप में दिए गए हैं, जिस रूप में वे साउथबरो कमेटी तथा साइमन कमीशन को प्राप्त हुए।

IV

अतः यह स्पष्ट है कि अस्पृश्यों की आबादी पाँच करोड़ के आसपास आंकी गई है। अस्पृश्यों की इतनी आबादी है, इसका पता 1911 के जनगणना आयुक्त ने लगाया। उसकी पुष्टि 1921 के जनगणना आयुक्त ने तथा 1929 में साइमन कमीशन ने की। बीस साल तक यह तथ्य रिकार्ड में दर्ज रहा। उस बीच किसी भी हिंदू ने उसे कभी भी चुनौती नहीं दी। वास्तव में हिंदू दृष्टिकोण को उन विभिन्न कमेटियों की रिपोर्टों के आधार पर मापा जाए, जिन्हें साइमन कमीशन से सहयोग करने के लिए प्रांतीय तथा केंद्रीय विधान–मंडलों ने नियुक्त किया था, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता कि उन्होंने इस आंकड़े को बिना किसी आपत्ति के स्वीकार किया।

लेकिन 1932 में जब लोथियन कमेटी बनी और उसने जाँच–पड़ताल शुरू की तो अचानक हिंदुओं ने चुनौती–भरा रुख अपनाया और उसने इन आंकड़ों को सही मानने से इंकार कर दिया। कुछ प्रांतों में तो हिंदुओं ने यहाँ तक कहा कि वहाँ तो कोई अस्पृश्य है ही नहीं। यह घटना हिंदुओं की मनोवृत्ति को दर्शाती है। अतः वांछनीय है कि उस पर कुछ विस्तार से चर्चा की जाए।

लोथियन कमेटी की नियुक्ति भारतीय गोलमेज सम्मेलन की मताधिकार संबंधी उप–समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप की गई थी। कमेटी ने समूचे भारत का दौरा किया और मध्य प्रांत तथा असम को छोड़कर शेष सभी प्रांतों की यात्रा की। कमेटी की मदद के लिए प्रांतीय सरकार ने हर प्रांत में प्रांतीय कमेटियों का गठन किया। उनमें यथासंभव हर प्रांत में मौजूद विभिन्न विचारधाराओं के विभिन्न राजनीतिक हितों के प्रवक्ता शामिल किए गए। इन प्रांतीय कमेटियों में मुख्य प्रांतीय कौंसिलों के सदस्य थे। उनका अध्यक्ष गैर–सरकारी लोगों को बनाया गया। चर्चा को केंद्रित करने के लिए भारतीय मताधिकार कमेटी ने एक प्रश्नावली जारी की। प्रश्नावली विचारार्थ विषय के क्षेत्र पर आधारित थी। मताधिकार कमेटी ने यह प्रक्रिया निर्धारित की कि प्रांतीय सरकारें प्रश्नावली में उठाए गए मुद्दों पर अपने निजी दृष्टिकोण निर्धारित करें और उनके बारे में कमेटी से चर्चा करें। प्राधिकृत सलाहकार के रूप में मान्य प्रांतीय कमेटियाँ स्वतंत्र रूप से अपने दृष्टिकोण निर्धारित करें और स्व–विवेक से साक्षियों के लिखित बयानों के आधार पर प्रारंभिक पड़ताल करें। अतः भारतीय मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट विस्तृत पड़ताल पर आधारित पूर्ण दस्तावेज है।

प्रधानमंत्री ने भारतीय मताधिकार कमेटी के अध्यक्ष लार्ड लोथियन को एक अनुदेश–पत्र भेजा था। उसमें कमेटी के विचारार्थ विषय का उल्लेख था। उसमें यह विचार व्यक्त किया गया :

(भारतीय गोलमेज सम्मेलन) में विभिन्न मुद्दों के बारे में जो चर्चाएं हुई, उनसे स्पष्ट हो गया है कि नए संविधान में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के बारे में पर्याप्त व्यवस्था करनी होगी और अब नामांकन द्वारा प्रतिनिधित्व की पद्धति को उपयुक्त नहीं माना जाता है। जैसा कि आपको मालूम ही है, इस बारे में मतभेद है कि दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचक–मंडलों की व्यवस्था की जाए या नहीं। अतः आपकी कमेटी की जाँच–पड़ताल से इस प्रश्न के निर्णय की दिशा में योगदान मिलना चाहिए। वह बताए कि आपकी सिफारिश के अनुसार मताधिकार के सामान्य विस्तार के जरिए किस हद तक दलित वर्ग सामान्य निर्वाचन–क्षेत्रों में मताधिकार प्राप्त कर सकेंगे। दूसरी ओर, यदि यह निश्चय किया जाए कि दलित वर्गों के लिए अलग निर्वाचक–मंडलों का गठन या तो सामान्यतः या फिर उन प्रांतों में किया जाए जहाँ आबादी में उसका स्पष्ट तथा अलग अंश है, तो आपकी कमेटी मताधिकार के विस्तार की सामान्य समस्या की पड़ताल करे और ऐसे तथ्य हासिल करे, जिससे दलित वर्गों के लिए अलग प्रतिनिधित्व का तरीका खोजने में सुविधा मिल सके।

तदनुसार भारतीय मताधिकार कमेटी ने जो प्रश्नावली जारी की, उसमें यह प्रश्न भी शामिल था : 'किन जातियों को आप दलित वर्गों में शामिल करेंगे? क्या आप अस्पृश्यों से इतर वर्गों को शामिल करेंगे, यदि हाँ तो किन्हें?

मैं भारतीय मताधिकार कमेटी का सदस्य था। जब मैं इस कमेटी का सदस्य बना तो मुझे मालूम था कि जिस मुख्य प्रश्न पर मुझे सवर्ण हिंदुओं से जूझना पड़ेगा, वह था अस्पृश्यों के लिए संयुक्त निर्वाचन–क्षेत्र बनाम पृथक निर्वाचक–मंडल का प्रश्न। मुझे पता था कि भारतीय मताधिकार कमेटी में अस्पृश्यों के विरोध में स्पृश्यों का पलड़ा भारी होगा। वहाँ कमेटी में मैं अस्पृश्यों का अकेला प्रतिनिधि हूँगा, जबकि सवर्ण हिंदुओं के आधा दर्जन प्रतिनिधि होंगे। ऐसे विषम संघर्ष के लिए मैंने स्वयं को तैयार कर लिया था। भारतीय मताधिकार कमेटी की सदस्यता स्वीकार करने से पूर्व मैंने यह शर्त रख दी थी कि अस्पृश्यों के लिए संयुक्त निर्वाचन–क्षेत्र रखे जाए या पृथक निर्वाचन–मंडल, यह प्रश्न कमेटी के विचारार्थ विषय में शामिल न किया जाए। इस शर्त को मान लिया गया और प्रश्न को भारतीय मताधिकार कमेटी के विचार के दायरे से अलग रखा गया। अतः मुझे इस बात का कोई डर नहीं था कि कमेटी में मुझे इस प्रश्न पर मतदान में हरा दिया जाएगा। यह एक ऐसी रणनीति थी, जिसके लिए मुझे हिंदू सदस्यों ने क्षमा नहीं किया। लेकिन एक दूसरी ही समस्या उठ खड़ी हुई, जिसका मुझे तनिक भी आभास नहीं था। वह समस्या अस्पृश्यों की संख्या की थी, जिसकी पड़ताल 1911 और 1929 के बीच चार अलग–अलग प्राधिकारियों ने की थी। उन्होंने पाया था कि अस्पृश्यों की आबादी कोई पांच करोड़ के लगभग होगी। मुझे इसका कोई आभास नहीं था कि भारतीय मताधिकार कमेटी के सामने इस प्रश्न पर कोई विवाद खड़ा हो जाएगा। भले ही विचित्र लगे, पर यह तथ्य है कि भारतीय मताधिकार कमेटी के सामने संख्या के मसले पर बड़ी कट्टरता से विवाद किया गया और उस पर लंबी खींचातानी हुई। कमेटी की अनगिनत बैठकें हुईं और अनगिनत साक्षी हाजिर हुए और उन्होंने अस्पृश्यों के अस्तित्व को नकारा। यह एक विचित्र घटना थी और मुझे उसका सामना करना पड़ा। यह तो संभव नहीं होगा कि उस प्रत्येक साक्षी के बयान का उल्लेख किया जाए, जिसने हाजिर होकर अस्पृश्य जैसे वर्ग के अस्तित्व को नकारा। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए इतना पर्याप्त होगा कि मैं अस्पृश्यों की आबादी के प्रश्न के बारे में प्रांतीय मताधिकार कमेटियों तथा उनके सदस्यों के विचारों का उल्लेख कर दूं।

पंजाब

पंजाब सरकार की राय :

पंजाब सरकार की राय है कि पट्टेदार को मताधिकार देने से दलित वर्गों के काफी लोगों को मताधिकार मिल जाएगा और उस हद तक कौंसिल के लिए प्रतिनिधि चुनने में उनका प्रभाव बढ़ जाएगा।'

जहाँ तक दलित वर्गों का संबंध है, पंजाब सरकार को ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि वह अपने उस दृष्टिकोण से विमुख हो जाए, जिसे वह ज्ञापन के पैरा 25 में व्यक्त कर चुकी है। इस ज्ञापन में भारतीय सांविधिक आयोग की सिफारिशों के बारे में पंजाब सरकार के सरकारी सदस्यों के ये विचार हैं कि पंजाब में इन वर्गों की कोई तात्कालिक समस्या नहीं है और उन्हें पट्टेदारों के रूप में कुछ प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाएगा।

के. बी. दीन मुहम्मद तथा श्री हंसराज (जो कमेटी में अस्पृश्यों के प्रतिनिधि थे) की राय है कि जहाँ मुसलमानों में कोई दलित वर्ग नहीं है, वहाँ हिंदुओं तथा सिखों में दलित वर्ग हैं। ... उनकी कुल संख्या 1,310,709 है। श्री हंसराज का विचार है कि यह सूची अधूरी है।

उनकी राय है कि दलित वर्गों को एक अलग समुदाय मानकर उनके लिए पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाए। श्री नाजिर हुसैन, राय बहादुर चौधरी, श्री छोटू राम, श्री ओम राबर्ट्स, के. बी. मुहम्मद हयात, श्री कुरेशी, श्री चटर्जी, सरदार भूटा सिंह और पंडित नानक चंद की राय है कि यह कहना असंभव है कि पंजाब में इस अर्थ में कोई दलित वर्ग है कि अपने धर्म के कारण किसी व्यक्ति के नागरिक अधिकार का हनन होता है। अध्यक्ष पंडित नानक चंद तथा सरदार भूटा सिंह की राय है कि जिस अर्थ में दक्षिण भारत में दलित वर्ग विद्यमान हैं, उस अर्थ में वे पंजाब में नहीं हैं। जहाँ गांवों में कुछ ऐसे वर्ग विद्यमान हैं, उस अर्थ में वे पंजाब में नहीं हैं। जहाँ गांवों में कुछ ऐसे वर्ग हैं जिनकी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति निश्चय ही अति दीन व हीन है, वहाँ यह संभव नहीं है कि जिस हिंदू चर्मकार या चमार को दलित वर्ग का कहा जाता है, उसका विभेद उस मुसलमान चर्मकार या मोची से किया जाए, जिसके बारे में कोई नहीं कहता कि वह अलग वर्ग का है।

अतः इससे स्पष्ट हो जाता है कि पंजाब प्रांत की सरकार इस प्रश्न का उत्तर देने से कतरा गई। पंजाब प्रांत की कमेटी ने बहुमत से इंकार कर दिया कि प्रांत में दलित अथवा अस्पृश्य जैसा कोई वर्ग है।

संयुक्त प्रांत

प्रांतीय मताधिकार कमेटी की राय :

संयुक्त प्रांत मताधिकार कमेटी की राय है कि केवल उन्हीं वर्गों को 'दलित' कहा जाए, जो अस्पृश्य हैं। इस कसौटी के अनुसार इन प्रांतों में अस्पृश्यता की समस्या है ही नहीं। अपवाद केवल भंगियों, डोमों तथा धानुकों का है। उनकी कुल संख्या स्पृश्य वर्गों सहित केवल 582,000 है।

संयुक्त प्रांत की प्रांतीय मताधिकार कमेटी में अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य बाबू रामसहाय ने अपने विमत टिप्पणी में कहा कि संयुक्त प्रांत में अस्पृश्यों की संख्या 1,14,35,117 है। संयुक्त प्रांत की प्रांतीय मताधिकार कमेटी में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले एक और सदस्य राय साहब बाबू रामचरन ने अपने विमत टिप्पण में कहा कि संयुक्त प्रांत में दलित वर्गों की संख्या दो करोड़ है।

संयुक्त प्रांत की सरकार ने सूचना दी कि अधिकतम अनुमान एक करोड़ 70 लाख का है। और न्यूनतम अनुमान 10 लाख से कुछ कम है। उनकी राय में सख्या 67,73,814 से अधिक नहीं है।

बंगाल

बंगाल प्रांत की मताधिकार कमेटी ने अपनी पहली रिपोर्ट में कहा :

कमेटी इस प्रश्न के बारे में किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकी और उसने संकल्प किया कि उसे केंद्रीय कमेटी के पास विचार के लिए वापस भेज दिया जाए।

अपनी अंतिम रिपोर्ट में उसी कमेटी ने कहा :

निर्धारित कसौटी के अनुसार, अर्थात अस्पृश्यता और असामीप्यता के अनुसार, जैसा कि इन शब्दों से भारत के अन्य भागों में अभिप्रेत है, कमेटी का विचार है कि केवल भुईमाली को छोड़कर बंगाल में ऐसा कोई अन्य वर्ग नहीं है।

बंगाल प्रांत की मताधिकार कमेटी में दलित वर्गों के प्रतिनिधि श्री मल्लिक ने अपने विमत टिप्पण में अनुसूचित वर्गों की 86 जातियों की सूची प्रस्तुत की।

बिहार और उड़ीसा

बिहार तथा उड़ीसा में 1911 की जनगणना के अनुसार दलित वर्गों की आबादी 93,00,000 थी और 1921 की जनगणना के अनुसार 8,000,000 थी।

लेकिन बिहार तथा उड़ीसा की प्रांतीय मताधिकार कमेटी ने अपने प्रांतीय ज्ञापन में कहा :

दलित वर्गों की परिभाषा के अंतर्गत आने वाली जातियों अथवा संप्रदायों की संपूर्ण सूची देना कठिन कार्य है। केवल इन वर्गों को दलित कहा जा सकता है, जैसे मुशहर, दुसाध, चमार, डोम और मेहतर। उनकी संख्या इतनी विशाल नहीं है कि व पृथक मतदाता सूची में उनके समूहन के औचित्य को सिद्ध किया जा सके। बिहार में दलित वर्गों की समस्या बंबई अथवा दक्षिण भारत जैसी विकट नहीं है। कमेटी का विचार है कि दलित वर्गों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की कोई जरूरत नहीं है।

पर इस कमेटी ने अपनी अंतिम रिपोर्ट में कहा :

जिन वर्गों को आमतौर पर अस्पृश्य माना जाता है, वे हैं, चमार, दुसाध, डोम, हलालखोर, हरि, मोची, मुशहर, पानपासी। ... लेकिन कमेटी के बहुमत सदस्यों का विचार है कि दलित वर्गों के रूप में विशेष प्रतिनिधित्व दिए जाने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि उनकी शिकायतें बंबई या दक्षिण भारत जैसी विकट नहीं हैं।

क्या कारण था कि हिंदुओं ने अचानक अपना रूख बदल लिया और अस्पृश्यों की करोड़ों की आबादी को नकारने का प्रयास किया? पांच करोड़ की संख्या तो 1911 के रिकार्ड में मौजूद थी। किसी ने भी उस पर आपत्ति नहीं की। क्या कारण है कि इस आंकड़े की सच्चाई को चुनौती देने का कोई कारण न होने पर भी 1932 में हिंदुओं ने इतने दृढ़ निश्चय से प्रयास किया।

जवाब सीधा–सा है। 1932 तक अस्पृश्यों का कोई राजनीतिक महत्व नहीं था। भले ही वे सामाजिक दृष्टि से हिंदू समाज की परिधि से बाहर थे, क्योंकि हिंदू समाज तो केवल चार वर्गों, अर्थात ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को मान्यता देता है, पर राजनीतिक प्रयोजनों के लिए उन्हें समाज का अंग माना जाता था। अतः राजनीतिक प्रयोजनों के लिए, जैसे विधान–मंडल आदि में प्रतिनिधित्व के लिए अस्पृश्यों की आबादी का प्रश्न कोई महत्व नहीं रखता था। 1932 तक राजनीतिक प्रश्न विधान–मण्डल में केवल हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच सीटों के बंटवारे का प्रश्न था। सीटों के बारे में ऐसा कोई प्रश्न नहीं था कि हिंदुओं के हिस्से में जो सीटें आएं, उनका बंटवारा स्पृश्यों और अस्पृश्यों के बीच हो। चूंकि पूरे–का–पूरा हिस्सा स्पृश्यों को मिलता था, अतः उन्होंने यह जानने की परवाह ही नहीं की कि अस्पृश्यों की आबादी कितनी थी। 1932 तक यह स्थिति पूर्णतया बदल गई। अब बंटवारे का प्रश्न हिंदुओं और मुसलमानों के

बीच, बंटवारे का प्रश्न नहीं रह गया था। अस्पृश्य यह दावा करने लगे थे कि बंटवारा न केवल हिंदुओं और मुसलमानों के बीच हो, बल्कि हिंदुओं को जो हिस्सा मिले, उसका और बंटवारा हो और अस्पृश्यों को उनका हिस्सा अलग से मिले और वे ही उसका और बंटवारा हो और अस्पृश्यों को उनका हिस्सा अलग से मिले और वे ही उसका उपयोग करें। अलगाव के इस दावे को मान लिया गया और अस्पृश्यों को छूट दी गई कि भारतीय गोलमेज सम्मेलन में उनके अपने सदस्य उनका प्रतिनिधित्व करें। इस प्रकार न केवल अस्पृश्यों के अलग अस्तित्व को स्वीकार किया गया, बल्कि भारतीय गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यक उप–समिति ने तो यह सिद्धांत भी स्वीकार कर लिया कि नए संविधान के अधीन दलित वर्गों को उनकी आबादी के अनुपात में सभी विधान–मंडलों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए। इस प्रकार अस्पृश्यों की आबादी के विषय को महत्ता प्राप्त हुई। जितनी कम आबादी अस्पृश्यों की होगी, राजनीतिक प्रतिनिधित्व का उतना ही बड़ा हिस्सा स्पृश्य हिंदुओं को प्राप्त होगा। इससे स्पष्ट हो जाएगा कि जो हिंदू 1932 से पहले अस्पृश्यों की आबादी के प्रश्न पर कोई विवाद करना नहीं चाहते थे, क्यों वे 1932 के बाद अस्पृश्य जैसे वर्ग के अस्तित्व को ही नकारने लगे।

लोथियन कमेटी के सामने अस्पृश्यों की संख्या घटाने के लिए हिंदुओं ने दो दिखावट आधारों पर जोर दिया। एक यह था कि जनगणना आयुक्त ने जो आंकड़े दिए वे दलित वर्गों के बारे में थे, अस्पृश्यों के बारे में नहीं थे, और दलित वर्ग में अस्पृश्यों के अलावा अन्य वर्ग भी शामिल थे। उनका दूसरा आधार यह था कि अस्पृश्य शब्द की व्याख्या समूचे भारत में एक जैसी होनी चाहिए और अस्पृश्यों की आबादी तय करने के लिए उसे सभी प्रांतों में लागू किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्होंने अस्पृश्यता की स्थानीय कसौटी पर आपत्ति की।

पहला दावा नितांत असत्य था। 'दलित वर्ग' शब्द का प्रयोग अस्पृश्यों के पर्याय के रूप में किया गया था। 'अस्पृश्य' शब्द के स्थान पर 'दलित' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया था कि यह सोचा गया कि 'अस्पृश्य' शब्द उन लोगों की भावनाओं को ठेस पहुंचाएगा, जिन्हें इस शब्द की परिधि में लाया जाना था। 'दलित' शब्द का प्रयोग केवल अस्पृश्यों के लिए किया गया था और इसमें आदिवासी तथा जरायम–पेशा लोग शामिल नहीं थे। यह बात उस बहस में स्पष्ट कर दी गई थी, जो 1916 में सम्राट की विधायी परिषद (इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) में माननीय श्री दादाभाई द्वारा प्रस्तुत संकल्प पर हुई थी। सवर्ण हिंदुओं का दूसरा दावा यह था कि अस्पृश्यता की कसौटी एक जैसी होनी चाहिए। इस दावे को प्रस्तुत करने का उद्देश्य अस्पृश्यों की संख्या को कम करना था। सभी जानते हैं कि भारत के अलग–अलग भागों में अस्पृश्यता के अलग–अलग रूप हैं। भारत के कुछ भागों में अस्पृश्य दृष्टिवर्जित हैं, यानी यदि उन पर किसी स्पृश्य हिंदू की दृष्टि पड़ जाती है, तो वह अपवित्र हो जाता है। कुछ भागों में वे सामीप्यवर्जित हैं, यानी वे अपवित्र कर देते हैं यदि वे किसी स्पृश्य हिंदू के पास निश्चित दूरी के भीतर आ जाते हैं। इन सामीप्यवर्जितों के भी दो वर्ग है। एक वर्ग वह है, जो स्पृश्य हिंदू के पास किसी निश्चित दूरी के भीतर नहीं जा सकता। सामीप्यवर्जितों का दूसरा वर्ग वह है, जो किसी हिंदू के इतना निकट नहीं जा सकता कि उसकी छाया हिंदू पर पड़ जाए। भारत के कुछ भागों में अस्पृश्य दृष्टिवर्जित या सामीप्यवर्जित नहीं है। केवल उसका शारीरिक स्पर्श ही अपवित्र करता है। कुछ भागों में अस्पृश्य वह है, जिसे मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। इन भिन्नताओं से यह स्पष्ट है कि यदि दृष्टिवर्जनीयता को ही अस्पृश्यता की एकमात्र कसौटी माना जाए, तो सामीप्यवर्जितों को अस्पृश्यों की श्रेणी से अलग करना होगा। यदि सामीप्यवर्जनीयता को कसौटी माना जाए, तो स्पर्श मात्र से अपवित्र करने वालों को अस्पृश्यों की श्रेणी से अलग करना होगा। यदि स्पर्श द्वारा अपवित्रता को कसौटी माना जाए तो उन लोगों को अलग करना होगा, जो जल या अन्न नहीं छू सकते। हिंदू यही करना चाहते थे। एक जैसी कसौटी पर आग्रह करके वे कतिपय वर्गों को अस्पृश्यों की श्रेणी से अलग करना चाहते थे, जिससे कि अस्पृश्यों की संख्या कम हो जाए। जाहिर है कि उनका दृष्टिकोण भ्रामक था। अस्पृश्यता किसी व्यक्ति के प्रति किसी हिंदू की आंतरिक घृणा की बाह्य अभिव्यक्ति है। यह घृणा कैसा रूप धारण करती है, वह अपेक्षतः एक नगण्य मामला है। रूप तो केवल घृणा की मात्रा को दर्शाता है। घृणा है जहाँ, अस्पृश्यता है वहाँ। यह सहज सत्य हिंदुओं से छिपा नहीं था।

पर वे जोरशोर से कसौटी की एकरूपता का राग अलापते रहे, क्योंकि वे चाहते थे कि जैसी भी हो, अस्पृश्यों की संख्या को कम किया जाए और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बड़े हिस्से को हड़प लिया जाए।

V

इसमें संदेह नहीं कि हिंदुओं और अस्पृश्यों के संघर्ष पर मुख्य उपाख्यान आधारित है। पर इस उपाख्यान के भीतर एक और उप–कथा है, जो महत्व से भरपूर है। यह है, पिछड़े वर्गों तथा अस्पृश्यों के बीच का संघर्ष। पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधियों का कहना था कि दलित वर्ग नामक श्रेणी में उस शब्द के सीमित अर्थ के अनुसार केवल अस्पृश्यो को ही शामिल न किया जाए, अपितु आर्थिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को भी शामिल किया जाए। जो लोग यह चाहते थे कि न केवल अस्पृश्यों को, बल्कि शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को भी अलग प्रतिनिधित्व दिया ही जाना चाहिए, उनका यह उद्देश्य प्रशंसनीय था। अपने इस सुझाव के द्वारा वे किसी नई चीज की मांग नहीं कर रहे थे। 1920 में जो संशोधित संविधान लागू हुआ, उसके अनुसार भारत के दो प्रांतों, अर्थात बंबई और मद्रास, में आर्थिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी जातियों के अधिकार को मान्यता दी गई। बंबई में मराठों तथा संबद्ध जातियों को और मद्रास में गैर–ब्राह्मणों को केवल इस आधार पर कि वे शैक्षिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े थे, अलग प्रतिनिधित्व दिया गया। आशंका यह थी कि यदि इन जातियों को विशेष प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया, तो सवर्ण हिंदुओं के अल्पसंख्यक जैसे ब्राह्मण तथा संबद्ध जातियां राजनीति के क्षेत्र में उनका दमन करेंगी। अन्य प्रांतों में भी ऐसी ही स्थिति वाली अनेक जातियां हैं। उन्हें विशेष राजनीतिक प्रतिनिधित्व की जरूरत है, ताकि उच्च जातियां उनका दमन न कर सकें। अतः हिंदुओं में से पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधियों का यह दावा पूर्णतया उचित ही था कि उनके लिए विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए। यदि उनके दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता तो दलित वर्गों के लोगों की संख्या में भारी वृद्धि हो जाती। लेकिन उन्हें अस्पृश्यों अथवा सवर्ण हिंदुओं से कोई समर्थन नहीं मिला। हिंदू ऐसे किसी भी प्रयास के विरुद्ध थे, जिसका उद्देश्य दलित वर्गों की संख्या में वृद्धि करना हो। अस्पृश्य यह नहीं चाहते थे कि उनकी श्रेणी में किसी ऐसे वर्ग के लोगों को शामिल किया जाए, जो वास्तव में अस्पृश्य न हो। इन पिछड़ी जातियों के लिए उचित मार्ग यही था कि वे मांग करते कि स्पृश्य हिंदुओं का विभाजन उन्नत तथा पिछड़े लोगों के रूप में किया जाए, और पिछड़े लोगों को अलग से प्रतिनिधित्व दिया जाए। उस प्रयास में अस्पृश्य उनका समर्थन करते। लेकिन वे इसके लिए सहमत नहीं हुए और आग्रह करते रहे कि उन्हें दलित वर्गों में शामिल किया जाए। उसका मुख्य कारण यह था कि उनका विचार था कि यह उनके उद्देश्य को पूरा करने का आसान तरीका था। लेकिन चूंकि अस्पृश्यों ने इसका विरोध किया, अतः पिछड़े वर्ग विमुख हो गए और उन्होंने हिंदुओं से भी अधिक उग्र रूप में अस्पृश्यों के अस्तित्व को नकारने में हिंदुओं का साथ दिया।

स्पृश्यों और अस्पृश्यों के इस संघर्ष में अस्पृश्यों को मुसलमानों से कोई समर्थन नहीं मिला। इस ओर ध्यान देना होगा कि पंजाब प्रांत की मताधिकार कमेटी में केवल एक मुसलमान ने अस्पृश्यों के प्रतिनिधि के उस आग्रह का समर्थन किया कि पंजाब में ऐसी जातियां है, जिन्हें अस्पृश्य माना जाता है। कमेटी के शेष मुस्लिम सदस्यों ने समर्थन नहीं किया। बंगाल में बंगाल प्रांत की मताधिकार कमेटी के हिंदू तथा मुस्लिम सदस्य इस बारे में सहमत हो गए कि वे इस मामले पर कोई विचार व्यक्त नहीं करेंगे। यह कैसी अजीब बात है कि मुसलमान सदस्यों ने चुप्पी साध ली। यह तो उनके हित में था कि अस्पृश्यों को पृथक राजनीतिक समुदाय के रूप में स्वीकार किया जाए। स्पृश्यों तथा अस्पृश्यों का यह अलगाव उनके हित में था। संख्या–वृद्धि के इस संघर्ष में मुसलमानों ने अस्पृश्यों की क्यों मदद नहीं की? मुसलमानों के इस रवैए के दो कारण थे। एक तो यह है कि मुसलमान अपनी आबादी के अनुपात से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व की मांग कर रहे थे। भारत की राजनीतिक शब्दावली के अनुसार वे अधिप्रतिनिधित्व की मांग कर रहे थे। वे जानते थे कि उनके अधिप्रतिनिधित्व से निश्चय ही हिंदुओं को घाटा होगा और प्रश्न केवल यह था कि हिंदुओं का कौन–सा वर्ग वह घाटा उठाए। स्पृश्य हिंदू इस अधिप्रतिनिधित्व की परवाह नहीं करेंगे, यदि वह उनके हिस्से में कमी किए बिना दिया जा सके। समस्या यह थी कि इसे कैसे किया जाए, और इसका एकमात्र रास्ता यही था कि अस्पृश्यों का हिस्सा कम कर दिया जाए। हिस्सा कम करने का अर्थ था, संख्या को कम करना। एक कारण तो यह है, जिसकी वजह से संख्या के इस संघर्ष में मुसलमानों को डर था कि हिंदू उनका पर्दाफाश कर देंगे। यद्यपि इस्लाम एक ऐसा धर्म है, जो जाति और रंग को लांघकर अलग–अलग लोगों को भाईचारे की डोर में बांध सकता है, फिर भी भारत में इस्लाम भारतीय मुसलमानों में से जाति को निर्मूल करने में सफल नहीं हो सका है। मुसलमानों में जातीयता की भावना उतनी उग्र नहीं है, जितनी कि हिंदुओं में है। लेकिन यह असलियत है कि उनमें यह भावना है। मुसलमानों में इस जातीयता की भावना से सामाजिक वर्गीकरण होता है और यह भारत में मुस्लिम संप्रदाय की विशिष्टता है, इस ओर उन सभी लोगों का ध्यान गया है, जिन्हें इस विषय में अध्यक्ष का अवसर मिला है। बंगाल के जनगणना आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट में कहा है :

हिंदू इन तथ्यों से भली–भाँति अवगत हैं और वे मुस्लिमों के खिलाफ उन्हें उद्धृत करने के लिए पूर्णतया तैयार थे, यदि मुस्लिम हद से आगे बढ़कर संख्या के इस संघर्ष में अस्पृश्यों का साथ देते और उसके कारण विधान–मंडल में सवर्ण हिंदुओं की सीटें घट जातीं। मुसलमान अपने कमजोर पक्षों को जानते थे। वे नहीं चाहते थे कि हिंदुओं को बहाना मिले और वे मुसलमानों के बीच सामाजिक फूट को भड़काएं। उन्होंने सोचा कि उनका सर्वोत्तम हितसाधन तटस्थ रहने में होगा।

इस प्रकार अपनी संख्या के संघर्ष में अस्पृश्य अकेले पड़ गए। लेकिन उन पर भी ध्येयपूर्ति के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता था। जब हिंदुओं ने देखा कि वे अस्पृश्यों की संख्या घटाने में सफल नहीं हो सकते, तो उन्होंने अस्पृश्यों को गुमराह करने की कोशिश की। वे अस्पृश्यों से कहने लगे कि सरकार अस्पृश्य जातियों की सूची तैयार कर रही है और ऐसी सूची में किसी जाति का नाम दर्ज कराना गलत होगा, क्योंकि इससे उन पर सदा के लिए अस्पृश्यता का ठप्पा लग जाएगा। उनकी सलाह मानकर अनेक जातियों ने जो वास्तव में अस्पृश्य जातियां थी, याचिका भेजकर कहा कि वे अस्पृश्य वर्ग की नहीं हैं और उनका नाम सूची में दर्ज न किया जाए। ऐसी याचिकाओं को वापस ले लिए जाने की प्रेरणा देने के लिए ऐसी जातियों से काफी माथापच्ची करनी पड़ी। उन्हें सूचित किया गया कि असली उद्देश्य उनकी संख्या का आकलन करने का है, ताकि विधान–मंडल में उनकी सीटों की संख्या तय की जा सके।

सभी के लिए सौभाग्य की बात है कि यह संघर्ष और विवाद अब समाप्त हो चुका है। अब अस्पृश्यों की संख्या के बारे में कभी भी विवाद नहीं उठाया जा सकता। अब कानूनी तौर पर अस्पृश्यों की परिभाषा कर दी गई है। कौन अस्पृश्य हैं, इसकी व्यवस्था भारत सरकार अधिनियम, 1935 की एक अनुसूची में कर दी गई है और उसमें उन्हें अनुसूचित जातियों के रूप में दर्शाया गया है। लेकिन संघर्ष हिंदू चरित्र की प्रवृत्ति को उजागर करता है। यदि अस्पृश्य कोई आवाज नहीं उठाता तो हिंदू उसकी दशा पर लज्जित नहीं होता और उनकी संख्या के बारे में उदासीन रहता है। चाहे वे हजारों में हों या करोड़ों में, उसे इससे कोई सरोकार नहीं। लेकिन यदि अस्पृश्य आवाज उठाते हैं और मान्यता की माँग करते हैं, तो वह इसके लिए कमर कस लेता है कि उनके अस्तित्व को नकार दे, अपने दायित्व को न ओढ़े, अपने अधिकार का बंटवारा न करे और दया तथा ममता से किनारा कर ले।

साभार :
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड–10
(पृष्ठ सं० 133 से 151 तक)
डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

क्या था पूना पैक्ट

जनता की जानकारी हेतु पूना समझौते का सार नीचे दिया जाता है –

1. प्रान्तीय विधानमण्डलों में सामान्य मतदान क्षेत्र में से दलित वर्गों के लिए निम्नलिखित स्थान आरक्षित रखे जाएंगे। मद्रास 30, सिन्ध सहित बम्बई 15, पंजाब 8, बिहार और उड़ीसा 18, मध्य प्रान्त 20, असम 7, बंगाल 30, संयुक्त प्रान्त 20, कुल 148.

ये आकड़ें (भारतीय मामलों के) प्रधानमन्त्री के निर्णय में घोषित प्रान्तीय परिषदों की कुल सदस्य संख्या के आधार पर दिए गए हैं।

2. इन स्थानों के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया के तहत संयुक्त मतदाताओं द्वारा चुनाव किया जाएगा –

किसी निर्वाचन क्षेत्र में सामान्य मतदाता सूची में दर्ज दलित वर्ग के सभी सदस्यों से मिलकर एक निर्वाचक मण्डल का गठन होगा, जो ऐसे प्रत्येक स्थान के लिए एकल मत प्रणाली द्वारा दलित वर्गों के चार उम्मीदवारों के एक पैनल का चुनाव करेंगे, ऐसे प्राथमिक चुनाव में सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले चार व्यक्ति सामान्य मतदाताओं द्वारा चुनाव के उम्मीदवार होंगे।

3. ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय विधानमण्डलों में सामान्य मतदाताओं को आबंटित स्थानों के अट्ठारह प्रतिशत पर उक्त विधानमण्डल में दलित वर्गों के लिए आरक्षित होंगे।

4. केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों के लिए चुनाव हेतु उम्मीदवारों के पैनल के लिए प्राथमिक चयन प्रणाली, जैसा कि इनमें इससे पहले उल्लेख किया गया है, पहले दस वर्षों के बाद, यदि नीचे दिए गए खण्ड–6 के प्रावधान के अन्तर्गत परस्पर सहमति से इससे पहले समाप्त न की गई हो, समाप्त हो जाएगी।

5. जैसा कि खण्ड 1 और 4 में प्रावधान किया गया है, प्रान्तीय और केन्द्रीय विधानमण्डलों में स्थानों को आरक्षित करके दलित वर्गों के लिए प्रतिनिधित्व की प्रणाली, यदि समझौते से सम्बद्ध सम्प्रदायों के बीच परस्पर सहमति से निश्चित न की गई हो, तो जारी रहेंगी।

6. दलित वर्गों के लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों हेतु मताधिकार लोथियन समिति की रिपोर्ट के अनुरूप होंगे।

7. स्थानीय निकायों के लिए चयन अथवा सरकारी सेवाओं में नियुक्ति के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का दलित वर्गों से सम्बन्धित होना कोई अयोग्यता नहीं होगी। सरकारी सेवाओं में नियुक्ति के लिए यथा निर्धारित शैक्षिक योग्यताओं के तहत इनके सम्बन्ध में दलित वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देने का हर सम्भव प्रयास किया जाएगा।

8. प्रत्येक प्रान्त में शैक्षिक अनुदान में से दलित वर्गों के सदस्यों को शैक्षिक सुविधाएं प्रदान किए जाने के लिए समुचित धनराशि नियत की जाएगी।

मद्रास सहित सभी दलित वर्गों का समर्थन प्राप्त है। हम प्रार्थना करते हैं कि इस समझौते को तात्कालिक प्रभाव से मान्य किया जाए, जिससे गांधीजी का आमरण अनशन तोड़ा जा सके।

यह सूचना दिनांक 24 सितम्बर, 1932 को इंग्लैण्ड में भारत मन्त्री लॉर्ड चांसलर और इर्विन वायसराय तथा रैमजे मैकडोनल्ड को भेज दी गई।

गांधीजी के प्राण बच गए। इस खबर से सारे माहौल में खुशी फैल गई। डॉ. आंबेडकर की स्वीकृति से गांधीजी के प्राण बच गए और एक महान दुर्घटना होते–होते बच गई। सभी पक्षों के नेताओं ने इसकी प्रशंसा की। हिन्दू महासभा के तात्या साहेब ने एक सभा पूना में तुरन्त 24 सितम्बर, 1932 को बुलाई और उसमें घोषणा की कि डॉ. आंबेडकर गांधीजी से भेंट कर एक समझौते पर राजी हो गए हैं। सभा में अनेक नेताओं ने डॉ. आंबेडकर की प्रशंसा की।

इस पर तेज बहादुर सप्रू तथा एम. आर. जयकर ने ब्रिटिश सरकार के प्रधानमन्त्री को तार द्वारा इस समझौते की सूचना दे दी तथा मालवीय जी और बी. एस. मुंजे आदि ने हिन्दू पक्ष से करार पर हस्ताक्षर किए। जिसमें सप्रू व जयकर भी शामिल हुए और डॉ. आंबेडकर तथा उनके साथी, एम.सी. राजा, एम. शिवतरकार, पी.एन. राजभोज, जी.ए. गवई आदि ने अछूतों के प्रतिनिधिस्वरूप हस्ताक्षर कर दिए। बाबा साहेब व श्रीनिवासन ने वायसराय को तार भेज कर सूचित किया– ''आपको सूचित करते हर्ष हो रहा है कि **साम्प्रदायिक घोषणा** के प्रश्न पर हम लोग एक समझौते पर राजी हो गए हैं। जिसका मुख्य प्रारूप आपको केबल तार द्वारा भेज दिया गया है।

इस समझौते से जब तक दलित वर्ग अज्ञान था, उसे अपने आत्म–सम्मान का ज्ञान नहीं था। यह सम्भव था कि उन पर जो सामाजिक स्थिति लाद दी गई, उसे स्वीकार कर लिया, किन्तु जैसे–जैसे वे शिक्षा प्राप्त करेंगे वैसे–वैसे वे हिन्दू समाज से अलग होते जाएंगे, मुझे इसका खतरा नजर आ है। अतः आप हिन्दू लोग इससे सावधान रहें तथा इसको सम्भव न होने देने के लिए उचित कार्यवाही करें। इसी में आपका भला है।

26 सितम्बर सोमवार को काउन्सिल की बैठक में **गृह सदस्य** भारत सरकार **माननीय एच. जी. हैग** द्वारा अध्यक्ष की अनुमति से समझौते को पढ़ा गया तथा उसका अनुमोदन किया गया। इस प्रकार यह भावी भारत का दलित हितैषी दस्तावेज सरकारी मान्यता को परवान चढ़ा।

इस खबर से **रोमां रोलां, मेडलिन रोलैन्ड डेनिस मलाय, जॉन हेन्स होमस, शफी जगलूल, मुस्तफा** और **जवाहरलाल नेहरू** की बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तुरन्त गांधीजी को तार द्वारा सूचित किया–

''समाचारपत्रों तथा आपके तार द्वारा यह समाचार सुनकर कुछ सांत्वना एवं सुख की अनुभूति हुई कि कुछ समझौता हो गया है। आपके द्वारा आमरण अनशन के समाचार से पहले तो बड़ी आत्मिक तकलीफ हुई और दुविधा भी, किन्तु अन्ततः आशावाद की विजय से मेरे मन को शान्ति मिली। दलितों के हित में किया गया कोई भी त्याग बहुत बड़ा नहीं हो सकता। आजादी को सबसे निचले दर्जे के आदमी की आजादी से ही आंकना चाहिए। किन्तु मुझे अन्य अभीष्ट प्राप्त करने में बाधाओं का डर है। मुझे यह भी भय लगता है कि आपके तरीके कहीं दूसरों द्वारा न अपना लिए जाएं; लेकिन मैं तेरे जैसे जादूगर को कोई मन्त्रणा कैसे दे सकता हूं? आपका–जवाहर लाल नेहरू (देहरादून जेल)

दिनांक 25 सितम्बर, 1932 को विधिवत् पूना पैक्ट पर निम्नलिखित नेताओं ने अपने हस्ताक्षर किए–

1. मदन मोहन मालवीय, 2. तेजबहादुर सप्रू, 3. एम. आर. जयकर, 4. बी. आर. आंबेडकर, 5 श्रीनिवासन, 6. एम. सी. राजा 7. सी. वी. मेहता, 8. सी. राज गोपालाचारी 9. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, 10. जी.डी. बिरला, 11. रामेश्वर दास बिरला, 12. बी.एस. कामथ, 13. जी. के. देवधर, 14. ए. पी. ठक्कर, 15. आर. के. बाखले, 16. पी. जी. सोलंकी, 17. पी. बालू, 18. गोविन्द मालवीय, 19 देवदास गांधी, 20. विश्वास, 21. पी. एन. राजभोज, 22. जी. ए. गवई, 23. शंकार लाल बणकर

इसके बाद निम्नलिखित लोगों के हस्ताक्षर बम्बई में हुए, जो अन्तिम बैठक थी –

1. लल्लू भाई सामलदास, 2. हंसा मेहता, 3. के. नटराजन, 4. कामकोटि नटराजन, 5. पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास, 6. मथुरा दास वासम, 7. बालचन्द हीराचन्द, 8. एच. एन. कुंजरु, 9. के. सी. लिमये, 10. पी. कोदण्डराव, 11. वी. एन. गॉडगिल, 12. मनु सूबेदार, 13. अवन्तिका बाई गोखले, 14. के. जे. चितालिया, 15. राधाकांत मालवीय, 16. ए. आर. भट्ट, 17. कोलम, 18. प्रधान।

डॉ. आंबेडकर ने एक बयान में कहा –

''यह सारी बातें अब भूतकाल की हो गई हैं। मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करके प्रसन्न ही हूँ। जहाँ तक मेरा तथा मेरी पार्टी का प्रश्न है मैं अपने साथियों और पार्टी सहित इस समझौते के साथ हूँ। इसमें किसी को सन्देह करने की गुंजाइश नहीं। मेरा केवल यह कहना है कि क्या हिन्दू समुदाय अभी भी एक प्रकार से सर्म्पूण नहीं है, बल्कि यदि मैं कहूँ कि यह अनेक समुदायों का परिसंघ ही है। मैं आशा एवं विश्वास करता हूँ कि हिन्दू समुदाय इस दस्तावेज को पवित्रता की दृष्टि से देखेगा और विश्वसनीय प्रतिभा से इसको कार्यान्वित करेगा। मैं विशेष रूप से सर तेज बहादुर सप्रू व सी. राजगोपालाचारी का आभारी हूँ, जिनके सहयोग से अनेक बिन्दुओं पर सहमति हो सकी... **मैं इस बात में विश्वास नहीं करता कि संयुक्त निर्वाचन प्रणाली दलित वर्ग का हिन्दू सम्प्रदाय में घुल–मिल जाने के लिए अन्तिम समाधान प्रमाणित होगी।**

मेरा विश्वास है कि कोई भी चुनाव प्रणाली समाज की इतनी बड़ी समस्या का समाधान नहीं हो सकती। अतः राजनीतिक समाधान के अतिरिक्त भी कुछ और की आवश्यकता होती है। मैं समझता हूँ कि दलितों के लिए अब यह सम्भव होगा कि वे अब केवल हिन्दू समुदाय के एक भाग ही बने रहें, बल्कि उनके समान ही पद, प्रतिष्ठा को प्राप्त करने तथा समता प्राप्त करने का प्रयत्न करें।''

डॉ. आंबेडकर उसकी व्यक्तिगत प्रशंसा के पात्र हैं। डॉ. आंबेडकर और उनके सहयोगियों ने जिस साहसपूर्ण ढंग से इस समझौते में भाग लिया। पत्रकारों द्वारा डॉ. आंबेडकर से अनेक प्रश्न पूछने पर उन्होंने कहा– मुझे विश्वास है और इस कथन में अतिशयोक्ति भी नहीं हैं कि पिछले दिनों मैं ऐसे असमंजस में फंस गया था, ऐसी कठिन परिस्थिति मेरे सामने उपस्थित थी, जिसमें दो बहुत नाजुक विकल्पों में से एक का चुनाव करना था। एक तरफ भारत के महान व्यक्ति के जीवन–रक्षा का प्रश्न था। दूसरी तरफ अपने समुदाय के हितों की रक्षा का प्रश्न था। जिन्हें मैंने प्रयत्न से अपनी बुद्धि के प्रकाश द्वारा **गोलमेज परिषद्** में वकालत करके प्राप्त किया था। मुझे प्रसन्नता है कि इस समाधान से गांधीजी का जीवन सुरक्षित हो गया और हमारे दलित भाइयों के हितों की भी रक्षा हो सकी। इस समझौते को अन्तिम रूप देने में गांधीजी की भूमिका की सरहना करनी पड़ेगी, क्योंकि मैंने पहली मुलाकात में ही यह पाया कि मुझमें और गांधीजी में बहुत कुछ सामान्य है। जैसा मिस्टर सप्रू ने आप लोगों को बताया कि कुछ बातें अवश्य ही बड़ी कठिन थीं। किन्तु यह सोचकर कि जो व्यक्ति गोलमेज परिषद् में हमारे बिलकुल विपरीत था। वह यहाँ हमें सहयोगी जैसा व्यवहार कर रहा था, इसके लिए हम गांधीजी का धन्यवाद करते हैं। मुझे खेद है कि गांधीजी ने भी गोलमेज परिषद् में इस प्रकार का रुख क्यों नहीं अपनाया? यदि उन्होंने अपने विचार अबकी तरह गोलमेज परिषद् में रखे होते तो शायद उन्हें इस कष्टमय परीक्षा से न गुजरना पड़ता।

पूना–समझौता की सफलता पर डॉ. आंबेडकर की स्वीकारोक्ति अनुबन्ध–पालन का संकल्प, अस्पृश्य उन्मूलन की मालवीय की योजना, अम्बेडकर को साहसी लड़ाई के लिए सप्रू की बधाई।

(दिन बॉम्बे क्रानिकल, दिनांक 25 सितम्बर, 1932)

''मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, जब मैं यरवदा जेल में गांधीजी से मिला और मैंने देखा कि उनके और मेरे बीच काफी कुछ सामान्य है। मैं सोचता हूँ कि पूना वार्ताओं में सबसे बड़ा श्रेय स्वयं गांधीजी को ही दिया जाएगा। मैं यह देखकर हैरान रह गया कि जो व्यक्ति गोलमेज सम्मेलन में मुझसे सर्वथा

भिन्न विचार रखता था, वह दूसरे पक्ष का उद्धार करने की अपेक्षा मेरा उद्धारक निकला। मैं गांधीजी के प्रति बहुत कृतज्ञ हूं।''

पूना–समझौता की अभिपुष्टि

गांधीजी के प्रति श्रद्धा के ये उद्‌गार डॉ. बी. आर. आंबेडकर द्वारा हिन्दुओं के सम्मेलन में व्यक्त किए गए, जो पूना–समझौते की पुष्टि करने के लिए इण्डियन मरचेन्ट्स चेम्बर हॉल में रविवार की संध्या को हुआ था। डॉ. आंबेडकर ने घोषणा की कि वह और दलित वर्गों के दूसरे नेता समझौते का पालन करने के लिए संकल्पबद्ध हैं, वे इसे अनुलंघनीय मानते हैं। (हर्षध्वनि)

सामाजिक कलंक मिटाने के लिए प्रचण्ड प्रचार

सम्मेलन के सभापति पण्डित मदन मोहन मालवीय ने घोषणा की कि 25 लाख रुपये का कोष एकत्र करने के लिए एक लघु समिति नियुक्ति की जाएगी, जो दलित वर्गों पर थोपी गई असमानता का सम्पूर्ण नाश करने के पक्ष में देश–व्यापी प्रचार करेंगी।

सर तेज बहादुर सप्रू ने समझौता कायम रखने के लिए युवा पीढ़ी से मार्मिक अपील की और मिशनरी भाव से सुधार–कार्य पर बल दिया, जिसकी हिन्दू समुदाय को बहुत अधिक आवश्यकता है।

महात्मा के लिए विटामिन

मि. राजगोपालचारी ने बताया कि यह समझौता गांधीजी के सत्याग्रह की सबसे बड़ी जीत है। यह गांधीजी के लिए पर्याप्त विटामिन हैं। वह इस समझौते को पूरा करने के लिए अकेले ही उनका साथ देंगे।

समझौते की पुष्टि से सम्बन्धित प्रस्तावों में, जो सम्मेलन में पारित किए गए, कहा गया कि दलित वर्गों पर थोपे गए अन्यायों का निवारण **स्वराज** संसद का पहला कार्य होगा।

पूना–समझौता अनुमोदित

पण्डित मदन मोहन मालवीय ने समझौते पर अपनी कृतज्ञता–ज्ञापन द्वारा अपना भाषण आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि वह उनके बहुत आभारी हैं, जो गांधीजी को स्वस्थ करने के उद्देश्य से पूना आए। उन्होंने कहा कि यह चमत्कारपूर्ण है कि कैसे गांधीजी ने अग्निपरीक्षा का सामना किया। उनका वजन घट गया है क्या प्रतिदिन हालत बिगड़ती जा रही थी। सभी को ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे परिस्थितियां तुरन्त उत्पन्न हो, जो उन्हें यथा–सम्भव शीघ्र उपवास समाप्त करने की शक्ति प्रदान करें। गांधीजी का उपवास अधिक समय तक न रह सके। वह गम्भीर आशा करते हैं कि पूना–समझौते के प्रकाश में साम्प्रदायिक निर्णय संशोधित होगा।

डॉ. आंबेडकर का आभार

उन्होंने सभी लोगों का आभार व्यक्त किया, जिन्होंने पूना–सन्धि वार्ता में भाग लिया। उन्होंने डॉ. आंबेडकर और दलित वर्ग के अन्य नेताओं के प्रति सम्पूर्ण वार्ता क्रम में धैर्य, सौहार्द और श्रेष्ठ भावना का परिचय देने के लिए, जिसके बिना एक निर्णय पर पहुंच पाना असम्भव था, विशेष रूप से आभार व्यक्त किया।

मुख्य चुनाव

उन्होंने कहा कि पूना–समझौते का प्रथम भाग भावी विधान परिषदों में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व से सम्बन्धित है। यह आरक्षित सीटों के साथ संयुक्त निर्वाचन पर आधारित है। इस सम्बन्ध में यह सम्मेलन प्रधान चुनावों के आयोजन और तदनुसार चुनावों के लिए प्रत्याशियों को नामांकित करने का सुझाव देने के लिए सर तेज बहादुर सप्रू का ऋणी है। समझौते के अन्तर्गत दलित वर्गों के मतदाता सामान्य सूची पर स्वयं को एक निर्वाचन मण्डल में तैयार प्रत्येक सीट के लिए चार व्यक्तियों को नामांकित करेंगे जिन पर प्रधान चुनावों में निर्णय लिया जाएगा। यह पद्धति दलित वर्ग समुदाय को यह आश्वासन देगी कि प्रधान चुनावों द्वारा नामांकित व्यक्ति उनके अपने समुदाय के सदस्य होंगे, जो समुदाय के पूर्ण विश्वास के योग्य होंगे।

महात्मा की तत्परता

डॉ. आंबेडकर का पहला सुझाव था कि साम्प्रदायिक निर्णय में उनको जो 71 सीटें दी गई हैं, उन्हें प्रधान चुनावों द्वारा भरा जाना चाहिए, किन्तु शेष सीटें प्रधान चुनावों का विषय नहीं हो सकतीं। जब गांधीजी के समक्ष यह मामला रखा गया, तो पण्डित जी ने कहा, उन्होंने न केवल इसे बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लिया है, वरन् सुझाव दिया है कि उन्हें शेष सीटों को इसी पद्धति से भरे जाने पर भी कोई आपत्ति नहीं है, यदि 71 सीटों के मामले में यह पद्धति अच्छी है, तो सभी सीटों के मामलों में यह भी उतनी ही अच्छी है। इसने दलित नेताओं को जीतने में लम्बा समय लिया। इस पद्धति से वे लोग चुने गए, जिनमें उनका विश्वास था। दूसरी ओर वही लोग अपने चयन के लिए सामान्य निर्वाचन के मतों पर निर्भर हैं, जिसने राष्ट्रीय कारणों से सही लोगों का चयन करने में उनकी सहायता की।

मोल–तोल की भावना में नहीं

उन्होंने दलित वर्गों के दिए गए प्रतिनिधित्व के विषय पर बोलते हुए आगे कहा कि उनमे कुछ असन्तोष हो सकता है। ऐसा मानने वालों को यह ध्यान में रखना होगा कि समझौता स्वेच्छा से हुआ था, इसमें मोल–तोल की भावना नहीं, किन्तु उन दलित नेताओं के मन से इस भय को निकाल देना होगा कि किसी दूसरी व्यवस्था में उनके हित समाप्त हो जाएंगे। वे इस आशंका से मुक्त होना चाहते हैं। मेरा विचार है कि यह भावना समाप्त हो गई है और अब उनमें ऐसा कोई भय नहीं है। जो प्रतिनिधित्व उनको प्रदान किया गया है, वह उसका दुगुना है, जो उन्हें ब्रिटिश सरकार ने दिया था।

उनके विचारानुसार ऐसी आशंका करने का कोई औचित्य नहीं है। यदि दलित वर्ग समुदाय के बहुत से सदस्य यह विचार रखेंगे, तो देश का हित प्रभावित होगा। ''मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि दलित वर्गों के वे सदस्य जो संयुक्त निर्वाचन के माध्यम से विधान परिषदों में आएंगे, एक दूसरे से अधिक देश–भक्त और गम्भीर होंगे। इसलिए स्थिति पर विचार करते हुए मैं आशा करता हूँ कि हमें अपने भाइयों के मनों से आशंका की भावना दूर करने के लिए प्रयास करना है। हम सद्‌भावना और सम्पूर्ण हृदय से इस समझौते का पालन करेंगे। मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि यह समझौता पूरे देश में स्वीकार किया जाएगा।''

पूना–समझौता पूरा करने का संकल्प

सभापति ने अपने निष्कर्ष में घोषणा की कि वे पूना–समझौते को अभी प्रभावी बनाने के लिए कृत संकल्प है और इस ध्येय के लिए उन्होंने बताया कि एक लघु समिति गठित की जाएगी, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पूना–समझौते की स्वीकृति, अस्पृश्यता को दूर करने और सभी सामाजिक अन्यायों को मिटाने के लिए प्रचार अभियान हेतु 25 लाख रूपये का कोष एकत्र करेगी। उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि कमेटी निर्बाध रूप से कार्य करेगी और आशा है कि तीन माह के अन्दर वांछित सुधार पूरे हो जाएंगे। ''इस विशाल कलंक के निवारण से हमारे धर्म की कोई हानि नहीं होगी, बल्कि हमारा धर्म एक महान गौरव से प्रकाशमान होगा, क्योंकि यही इसकी वास्तविक सार्वभौमिकता है।''

उन्होंने कहा कि इन सुधारों को पूरा करने के लिए निष्क्रियता अथवा विलम्ब के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। ''आप देश में दो बार गांधीजी पैदा होने की सम्भावना नहीं कर सकते और शायद बहुत सी सदियों में भी। आप उनसे यह भी अपेक्षा नहीं कर सकते कि वह अपनी आत्मा की इच्छा के लिए दूसरा आमरण अनशन करने की प्रतिज्ञा करें। सिर्फ वर्तमान में विद्यमान सामाजिक अन्यायों को दूर करने की बात नहीं है, अपितु एक ऐसा आदर्श निर्माण करना है कि हिन्दू समाज से अछूत ही समाप्त हो जाएं।''

डॉ. आंबेडकर : साधु, साधु।

अस्पृश्यता मिटानी है

पण्डित जी ने आगे कहा कि गांधीजी का लक्ष्य अस्पृश्यता को पूर्णतया मिटाना है। इससे हम सबको उनको सहयोग देना है। हम उपवास करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं, जैसा कि उन्होंने किया, परन्तु इस कार्य को पूरा करने के लिए जिसका हमने फैसला किया है, हम अपना कुछ समय अवश्य दे सकते हैं। आपसे यही मेरी अपील है। इस कमेटी को इन प्रस्तावों के ज्ञान को देश के हर नागरिक तक पहुंचाने के लिए कार्य करना है और एकता उत्पन्न करने के लिए व्यवहारिक कदम उठाने हैं, जो आवश्यक हैं। देश में पहले से ही उथल–पुथल है। पिछले बारह वर्ष में काफी कार्य हुआ है, परन्तु जो कार्य होना शेष है, वह बहुत बड़ा है, और यह महान् सन्तोष और कृतज्ञता का विषय है कि सम्पूर्ण देश ने स्थिति की गम्भीरता को पहचान लिया है। हमने कुएं और मन्दिर प्रतिदिन दलित जनता के लिए खोले जाने के समाचार भी सुने हैं। यदि हम आज सभी मन्दिरों को खुलवाने में सफल नहीं होते हैं, तो मैं आपसे धैर्य रखने की प्रार्थना करूंगा। सम्भवतः हमें लम्बी प्रतीक्षा भी करनी पड़े, किन्तु अन्ततः सफलता निश्चित है। मुझे भरोसा है कि हम बल प्रयोग से नहीं, वरन् वैध और शान्तिपूर्ण तरीकों से सफलता प्राप्त करने में सफल होंगे।

माननीय मथुरादास विष्णोणजी खिमजी ने पूना–समझौते के समर्थन में एक प्रस्ताव रखा।

पूना का सौदा

सर तेज बहादुर सप्रू ने अपने भाषण के बीच में कहा कि यद्यपि वह भारतीय व्यापारियों के चेम्बर में बोल रहे हैं, परन्तु पूना की इस सौदेबाजी में हुई लाभ–हानि के हिसाब का कोई संदर्भ प्रस्ताव में नहीं रखा है। (हंसी) न ही उन्होंने इस समझौते के धार्मिक स्वरूप पर चर्चा की है। इस विषय को उन्होंने सभा में उपस्थित सनातनी प्रतिनिधियों पर छोड़ दिया है। वह इसकी परख पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष और स्वार्थ की दृष्टि से करना चाहते हैं। उनके विचार में किसी भी अन्य तथ्य से अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि पूना की कार्यवाही सनातनवाद के महान् मूर्तिरूप पण्डित मदन मोहन मालवीय के सभापतित्व में चलाई गई। उन लोगों को, जो हिन्दू समाज को अपरिवर्तनीय और गतिहीन मानते हैं, तथा समय के आह्वान के विरूद्ध हैं, पूना का समझौता एक उत्तर है।

सनातनी पुरोहित

इसके बाद सर तेज बहादुर सप्रू ने पण्डित मालवीय के प्रति विशेष श्रद्धा व्यक्त की, जिनमें, उनके अनुसार उच्च शुद्ध चरित्र का दावा और हर वह चीज, किसी भी धर्मपरायण पुरोहित से अधिक है, जो हिन्दू धर्म में सर्वश्रेष्ठ और उदार है।

पण्डित मालवीय से पृथक् अगला महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने हिन्दू समुदाय की सनातनी भावनाओं का ही प्रतिनिधित्व किया है। वे लोग दूसरे ही थे, जिन्होंने दलित वर्गों के प्रतिनिधियों को विश्वास में लिया। न केवल उनके समुदायों ने उनको विश्वास में लिया, बल्कि सरकार द्वारा इस सीमा तक उन पर भरोसा किया गया कि गोलमेज सभा में अपने समुदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिए चुने गए। उन्होंने लण्डन की सभा में दलित वर्ग के दो प्रतिनिधियों डॉ. आंबेडकर और मि. श्रीनिवासन का उल्लेख किया। प्रतिनिधि के रूप में उनके चरित्र पर मैं अब वार्ता नहीं करूंगा, क्योंकि वह औचित्यपूर्ण नहीं है। (तालियां)

भविष्य के लिए अच्छा योद्धा

डॉ. आंबेडकर, उन्होंने कहा, अपने ध्यये के लिए, जिसका उन्होंने प्रतिनिधित्व किया, बहुत बहादुरी से लड़े और उन्होंने देश के भावी जीवन में एक अच्छा योद्धा होने की प्रतिज्ञा की।

डॉ. आंबेडकर के अतिरिक्त मि. राजा भी बिना संकोच के समाधान के लिए सहमत हो गए। इसलिए, उन्हें यह कहने का अधिकार है कि वह समझौता सनातनी समाज और दलित वर्गों के अत्यधिक अधिकृत प्रतिनिधियों, दोनों के समर्थन से हुआ है।

''हमारे आलोचकों द्वारा यह कहा जा सकता है कि यह प्रधानमन्त्री के अवार्ड और हिन्दू समुदाय की चेतना को जागृत करने की दृष्टि से गांधीजी जी प्रतिज्ञा के लिए आवश्यक था। यदि इस कारण से इतना होता है, तो मैं पूरी ईमानदारी से कहता हूं कि प्रधानमन्त्री के अवार्ड ने हमारी सच्ची सेवा की है। किन्तु प्रधानमन्त्री के अवार्ड से कहीं अधिक बड़ी सेवा गांधीजी की प्रतिज्ञा ने की है। (हर्षध्वनि) हम यहाँ उस प्रतिज्ञा के धार्मिक

अथवा नैतिक स्वरूप पर चर्चा करने के लिए एकत्र नहीं हुए हैं, किन्तु जिस एक चीज से हम जुड़े हैं वह यह है कि हम चाहे गांधीजी से सहमत हैं या असहमत परन्तु हममें से कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस चुनौती का सामना कर सके, अथवा उनके स्वविश्वास की गहराई के विषय में सन्देह करता है।''

महात्मा की निष्ठा असन्दिग्ध

''मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह मेरा दुर्भाग्य है कि कुछ मामलों में मैं गांधीजी से पूर्णतया सहमत नहीं, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से उनके निकट सम्पर्क में रहते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि दलित वर्गों के सम्बन्ध में उनकी निष्ठा पर सन्देह करना असंगत होगा। हमारे अनेक मामलों में मुझे आशा है, मैं किसी को दोष नहीं दे रहा हूँ, जब मैं कहता हूँ कि राष्ट्रीयता महज भाषण की चीज है, पर गांधीजी के लिए, यह उनके जीवन की सांस है।''

''मैं अपेक्षाकृत राष्ट्र के सम्बन्ध में सवर्ण हिन्दुओं के अथवा किसी अन्य सम्बन्ध में गांधीजी की कल्पना भी नहीं कर सकता। जब कठिन परिस्थितियां उत्पन्न हुईं, एक वही हैं, जिनसे हम सलाह लेने गए और दो बिन्दुओं पर उनकी सलाह ने सचमुच की स्थिति को सम्भाल लिया था। वास्तव में, वह हर प्रकार से सच्ची राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करते हैं, हमने उनकी सलाह को स्वीकार किया और यह समझौता सम्पन्न हुआ।''

''मैं कहूँगा कि इस समझौते को समर्थन देते रहना ही हमारा स्पष्ट कर्तव्य है। मैं युवा पीढ़ी से विशेष रूप से प्रार्थना करूँगा कि दलित वर्गों के हित के लिए ही गांधीजी ने अपना जीवन बलिदान करने का निश्चय किया था। यदि आप उनके पास जाएं और पानी की बोतल के साथ आकाश की छत के नीचे उन्हें लेटे हुए देखें, कि वह उस स्थिति में भी पूरी सक्रियता से हम सभी के प्रश्नों का उत्तर देते हैं, हमें उनके सन्देश को देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाने के लिए मिशनरी भावना से कार्य करना चाहिए। केवल तभी हम देश की सच्ची और सही सेवा कर पाएंगे और **स्वराज** के लिए, जिसकी हम आकांक्षा कर रहे हैं, आधार–शिला रख पाएंगे।''

पूना समझौते की अभिपुष्टि में प्रस्ताव के समर्थन में डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने जिनके उठने पर हर्षध्वनि से स्वागत हुआ, घोषणा की–

''मुझे विश्वास है, मेरे इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कुछ दिन पहले तक कोई भी व्यक्ति इतने बड़े धर्म संकट में नहीं था, जितना मैं था। मेरे समक्ष कठिन परिस्थिति पैदा हो गई थी, जिसमें मुझे दो कठिन विकल्पों में से किसी एक को चुनना था।''

डॉ. आंबेडकर धर्म संकट में

''भारत के एक महापुरुष के जीवन को बचाने का प्रश्न था। साथ ही अपने समुदाय के हितों की सुरक्षा करने की समस्या भी मेरे समक्ष थी, जिसके लिए मैंने गोलमेज सम्मेलन में प्रयास किया था। मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि यह हम सबके सहयोग से सम्भव हो गया; गांधीजी का जीवन भी बच गया और दलित वर्गों के हितों की सुरक्षा के लिए भी अनुकूल और आवश्यक समाधान खोज लिया गया। मेरा विचार है कि इन वार्ताओं की सफलता का बड़ा, श्रेय गांधीजी को ही दिया जाएगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, जब मैं उनसे मिला और यह पाया कि उनके और मेरे बीच काफी कुछ समानता है।'' (हर्षध्वनि)

''वास्तव में, जो भी विवाद उनके समक्ष रखा गया, वह सहज ही हल हुआ; और सर तेज बहादुर सप्रू ने आपको बताया कि वे विवाद बहुत ही कठिन प्रकृति के थे। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि जो व्यक्ति गोलमेज सम्मेलन में सर्वथा मेरा विरोधी था, वह अपने वर्ग का उद्धार करने की अपेक्षा मेरा उद्धारक निकला। मैं गांधीजी का बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने कठिन परिस्थितियों में मुझे मुक्त कराया।''

एक ही दुख

''मुझे सिर्फ एक ही दुख है कि गांधीजी ने यह दृष्टिकोण गोलमेज सभा में क्यों नहीं अपनाया? यदि वह वहां भी मेरे विचारो को इतना महत्व दे देते, तो उन्हें इस अग्नि–परीक्षा में से गुजरने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। बहरहाल, ये सब भूतकाल की चीजें हैं, मुझे हर्ष है कि इस प्रस्ताव के समर्थन में मैं यहाँ उपस्थित हूँ।''

मैं समझौते पर दृढ़ रहूँगा

''चूंकि अखबारों में इस समझौते पर सम्पूर्ण दलित वर्गों के समर्थन को लेकर प्रश्न उठाया गया है, इसलिए मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि जितना मैं इस समझौते से सम्बद्ध हूँ और इसका जितना अंश मुझसे सम्बन्धित है, मैं दूसरे मित्रों से, जो यहां उपस्थित हैं, कह भी चुका हूँ। मैं इसका पालन करने के लिए दृढ़ रहूँगा। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जाना चाहिए।''

''मेरी चिन्ता सिर्फ यह है कि क्या हिन्दू समुदाय भी इस पर दृढ़ रहेगा। (आवाजें–हाँ, हाँ, हम रहेंगे।) हमारा अनुभव है कि हिन्दू समुदाय दुर्भाग्य से पूर्ण रूप में सम्पूर्ण (अखण्ड) नहीं है, बल्कि, मैं यह कहूँगा कि वह लघु समुदायों का एक संघ है। मुझे आशा और विश्वास है कि हिन्दू अपने स्तर पर इस दस्तावेज को पवित्र रूप में मानेंगे और उच्च भावना से इसका पालन करेंगे।''

''एक और न्यायसंगत बात मैं कहना चाहूंगा। मैं उन सभी मित्रों का बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने वार्ताओं में भाग लिया, परन्तु विशेष रूप से सर तेज बहादुर सप्रू और मा. सी. आर. राजगोपालाचारी का अधिक आभारी हूँ। सर तेज बहादुर सप्रू के बिना बहुत से बिन्दुओं को निष्पादित करना कठिन हो जाता है। पिछले दो वर्षों से उनके साथ अपने अनुभवों के आधार पर मैं यह स्वीकार करता हूँ कि भारत में यदि कोई व्यक्ति है, और तमाम साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों के ऊपर है, तो वह सर तेज बहादुर सप्रू हैं। उनका निष्पक्ष भाव और न्याय उन सभी अल्पसंख्यकों के लिए कल्याणकारी है, जो नए संविधान में कुछ सुरक्षा सुनिश्चित करने के अभिलाषी हैं।''

राजगोपालाचारी और मालवीय को धन्यवाद

मैं अपने मित्र राजगोपालाचारी को धन्यवाद दूंगा। क्योंकि, जब भी हमारी वार्ता टूटने के स्तर पर आयी, उन्होंने हमारा उद्धार किया। यदि उनकी पटुता प्राप्त नहीं होती, तो सम्भवतः यह समझौता अस्तित्व में नहीं होता। मैं पण्डित मालवीय को भी उनकी शिष्टता और सहिष्णुता के लिए धन्यवाद देता हूँ, जिसे उन्होंने उन सभी वार्ताओं में उत्तेजित शब्दों के आदान–प्रदान और उग्र बहस के मध्य प्रदर्शित किया।

''जो परिवर्तन साम्प्रदायिक अवार्ड में किया गया है, वह इस विचार से आग्रह किया गया है कि पृथक् निर्वाचन राष्ट्रीय हितों के लिए घातक हैं। मुझे स्वीकार करना होगा कि मुझे इस समझौते पर विश्वास बाकी है। मैं समझ सकता हूं कि बहुसंख्यकों के लिए पृथक् निर्वाचन हानिकारक है, किन्तु मुझे अभी यह स्वीकार करना शेष है कि अल्पसंख्यकों के लिए पृथक् निर्वाचन एक बुराई है।''

अन्तिम निर्णय नहीं

मुझे विश्वास नहीं है कि संयुक्त निर्वाचन हिन्दू समुदाय में दलित वर्गों को मिला लेने की समस्या का अन्तिम समाधान होगा।

''कोई भी चुनाव व्यवस्था किसी बड़ी समस्या का हल नहीं हो सकती। इसके लिए अपेक्षाकृत अधिक राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता है और मेरा मत है कि यह आपके लिए इस राजनीतिक व्यवस्था से बाहर जाकर ही सम्भव होगी, जो आज हम बना रहे हैं और जो तरीके और साधन तलाश कर रहे हैं, उसके द्वारा न केवल दलित वर्ग का हिन्दू समुदाय अभिन्न हो जाना सम्भव होगा, बल्कि वे एक सामान्य स्थान, समुदाय में समानता की स्थिति को भी प्राप्त कर लेंगे। ऐसी मुझे आशा है।''

''जब तक दलित वर्ग अशिक्षित और आत्म–सम्मान की भावना से रहित हैं, तब तक वे उस जीवन व्यवस्था के स्तर को स्वीकार करते रहेंगे, जो हिन्दू धर्म में उनके लिए निर्धारित हैं, परन्तु ज्यों ही वे शिक्षित होंगे, वह इन सामाजिक कानूनों के अन्दर दुख से छटपटाना शुरु कर देंगे और यही उनके हिन्दू समाज से अलग होने का सबसे बड़ा खतरा है। मैं आपको यह स्मरण कराने की प्रार्थना करता हूं और आशा करता हूं कि आप इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाएंगे।''

राव बहादुर एम.सी. राजा ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं के हृदय परिवर्तन को स्पष्ट रूप से अनुभव किया है और इसी कारण से उन्होंने समझौते को समर्थन दिया। उन्हें जरा भी सन्देह नहीं कि यह समझौता देश के सभी दलित वर्गों द्वारा स्वीकार किया जाएगा।

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

नटराजन की निराशा

पहला प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित घोषित किया गया। दूसरे प्रस्ताव पर बोलते हुए मि. के. नटराजन ने कहा, 'मन्दिरों को खोल देना पर्याप्त नहीं है। इसमें क्या है? मैं पिछले 30 वर्षों से मन्दिर नहीं गया हूँ और यदि वे अछूतों के लिए खोल दिए गए हैं, तो इससे मुझे क्या असर पड़ता है? जरूरत यह है कि हमारे घरों में उनका स्वागत हो। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक जातियां रहेंगी, तब तक अछूत भी रहेंगे।''

उन्होंने सुझाव दिया कि डॉ. आंबेडकर और मि. राजा हाथ मिलाएं। (हंसी) प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

मुखिया का धन्यवाद प्रस्ताव

मि. सी. राजगोपालाचारी ने गांधीजी के प्रति धन्यवाद प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि गांधीजी ने अपना उपवास अभी तोड़ा नहीं है। वह अभी हवा, पानी और धूप पर सन्तुष्ट हैं। समझौते की यह खुशखबरी उनके लिए पर्याप्त विटामिन है, किन्तु समझौतेके कार्यान्वयन से उनको अपेक्षित जीवन प्राप्त होगा। उन्होंने कठोर और दृढ़ मनुष्य डॉ. आंबेडकर से मिलने की अपेक्षा की थी। किन्तु पूना में उनकी भेंट हुई। गांधीजी से मिलते हुए उन्होंने देखा कि वह एक साधारण और अच्छे इन्सान हैं, जैसे कि वह स्वयं हैं। (हंसी) उन्होंने बताया कि गांधीजी ने सत्याग्रह में महान प्रयोग किया और उसमें वह डॉ. आंबेडकर का मन परिवर्तन करने में भी सफल हुए। उन्होंने डॉ. आंबेडकर को जोर–जबरदस्ती से नहीं परिवर्तित किया, अपितु उपवास के सत्याग्रही तरीके से परिवर्तित किया।

पण्डित मालवीय ने घोषणा की कि वह केलप्पन द्वारा घोषित किए गए उपवास के सम्बन्ध में महात्मा से वार्ता करने जा रहे हैं, जो उन्होंने मालाबार के गुरवयूर मन्दिर में दलित वर्गों के प्रवेश के अधिकार को लेकर किया है।

सम्मेलन के सदस्य

रविवार के सम्मेलन में जो नेतागण उपस्थित थे, वे इस प्रकार हैं– सर तेज बहादुर सप्रू, सर लल्लूभाई सामलदास, सर पुरुषोत्तम दास, सर चुन्नीलाल मेहता, सर गोविन्द मदगावस्कर, मि. एम. आर. जयकर, पण्डित हृदयनाथ कुन्जरु, मि. जी. के. देवधर, मि. बी.एन. करंजिया, मि. के. नटराजन, रावबहादुर एम. सी. राजा, डॉ. आंबेडकर, मि. पी. बालू, श्रीमती डी. जी. देलवी, कु. नटराजन, श्रीमती हंसा मेहता, श्रीमती अवन्तिका बाई गोखले, मि. वी. एस. कामत, मि. मनू सूबेदार, मि. जी. डी. बिरला, मि. डी. पी. खेतान, मि. बी. एफ. भारुचा, डॉ. सोलंकी, डॉ. चोइतराम गिदवानी, लेडी चिमनलाल शीत, मि. बालचन्द्र हीराचन्द्र, मि. बी. जे. देवरुखकर, मि. सी. राजगोपालाचारी, मि. देवदास गांधी, मि. टी. प्रकासम और बाबू राजेन्द्र प्रसाद।

इस प्रकार के कांग्रेस के उदारवादी हिन्दू नेताओं ने अनमने ढंग से कुछ सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया तथा अनेक स्थानों पर दलितों के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार भी किया।

साभार :
पूना–पैक्ट क्यों, क्या और किसके लिए (पृष्ठ सं० 106 से 120 तक)
शीलप्रिय बौद्ध